मुद्रक—सुशीलचन्द्र वर्मा

सरस्वती प्रेस,

जार्जटाउन, इलाहाबाद।

प्राक्प्रवचन

आधुनिक हिन्दी-काव्य का अत्यभिराम आराम वस्तुतः दो विभिन्न विभागों में विभक्त है। प्रथम विभाग तो महाभाग ब्रजभाषा का काव्य कुंज-पुंज है और द्वितीय नवोदीयमान खड़ी-बोली का वह काव्य-कानन है, जिसमें कियत काल से ही कलाकारों ने रम्य रचना का श्रीगणेश किया है और अभी केवल कुछ ही नव्य-भव्य काव्य-द्रुम रमाये और जमाये हैं।

प्रथम विभाग के भी स्थूल रूप से दो उप-विभाग किये जा सकते हैं। एक तो प्राचीन-परिपाटी के ही सर्वथा समीचीन सा है और दूसरा कुछ अर्वाचीन विशेषताओं का अपने रंग-ढंग से आभास लिये हुए नवीन। दोनों विभागों में आर्य कार्य हो रहा है, दोनों में सुन्दर सुमनों का विकाश-प्रकाश है और दोनों में अपनी-अपनी रुचिर रोचकता है।

साधारणतया हम ब्रज-भाषा के इस काव्योपवन को आधुनिक ब्रज भाषा-साहित्य कह सकते हैं। साथ ही इनका प्रस्फुटन-प्रारम्भ स्थूल रूप से भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पश्चात् से ही मान सकते हैं। अतएव कहना चाहिए कि अभी केवल अर्ध शताब्दी का ही समय इसके प्रारम्भ प्रसार को हुआ है। इन ५० वर्षों के समय को हम दो मुख्य भागों में इस प्रकार रख सकते हैं:—

पूर्वार्ध-काल—जो स्थूलतया संवत् १९४७ (सन् १८९०) से संवत् १९७२ (सन् १९१५) तक आता है।

उत्तरार्ध-काल—जो लगभग संवत् १९७२ (सन् १९१५) से संवत् १९९९ (सन् १९४२) या आज तक आता है।

यद्यपि यह सत्य है कि भारतेन्दु बाबू के ही समय से इस आधुनिक ब्रज-भाषा-काव्य का अथ होता है, तथापि इस संग्रह में उन्हें इसलिए छोड़ दिया गया है कि स्वर्गीय पंडित रामचन्द्र शुक्ल तथा रावराजा

भारतेन्दु बाबू ने ऐसा करने में प्रथम तो प्राचीन व्रज-भाषा का परिशोधन किया—उसमें से बहुत से ऐसे शब्द और प्रयोगादि हटा दिये जो बहुत घिस कर साधारणतया जनता के प्रयोग से दूर हो चुके थे और केवल परम्परा के पालनार्थ ही रक्खे जाते थे। साथ ही ऐसे शब्दों तथा वाक्यांशों को भी उन्होंने छोड़ दिया जो प्रयोग-बाहुल्य से श्रुति-सुखद भी न रह गये थे, वरन् केवल कवि-परिपाटी के ही आधार पर व्यर्थ के लिए प्रयुक्त किये जाते थे और जो बहुत कुछ अपनी भाव-व्यंजकता भी खो चुके थे। बहुधा ऐसे शब्दों का प्रयोग इधर के साधारण कवि बिना उन के अर्थादि के जाने ही कर दिया करते थे, इसी प्रकार उन्होंने उन पदों और वाक्यांशों को भी विलग कर दिया जिनमें विशेष अर्थ-गम्भीरता और भाव-व्यंजकता न थी।

इसके अनन्तर उन्होंनें व्रजभाषा के क्षेत्र में नव्य-भव्य भाव-व्यंजक और रस-राग-रंजक पदों तथा प्रयोगों का सुन्दर समावेश भी कर दिया जिससे व्रजभाषा में नवीन स्फूर्ति और शक्ति आ गयी—उसमें नवजीवन का सुसंचार हो चला और वह फिर सबल और सजीव होने लगी। भारतेन्दु बाबू का अनुसरण उनके समकालीन तथा मित्र कवियों ने भी बड़ी सफलता-पूर्वक किया।

इस समय से पूर्व व्रजभाषा के काव्य-कला-काल का अवसान-युग चल रहा था; किन्तु इस समय व्रजभाषा-काव्य के क्षेत्र में काव्य-कला-कौशल का कोई विशेष प्राधान्य एवम् प्राबल्य न रह गया था। काव्य में अलंकार-चातुर्य्य का भी विशेष प्राचुर्य्य न पाया जाता था। यद्यपि तत्कालीन कवियों के समक्ष काव्य के लिए कोई विशेष सामग्री न रह गयी थी—केवल प्राचीन परम्परागत भक्ति, शृंगार आदि सम्बन्धी कुछ विशेष विचार-धाराएँ अवश्यमेव थीं—किन्तु उनमें भी मौलिकोद्भावना के लिए बहुत कम स्थान बचा था। कला-काल की मुक्तक-रचना का बाहुल्य-प्राबल्य इस समय भी विशेष रूप में रहा। इसी के साथ समस्या-पूर्ति की प्राचीन प्रथा अवश्यमेव बड़ी प्रबलता और प्रचुरता के साथ

चलती रही। यद्यपि इसे आश्रय देने वाले अब वैसे राज-दरबार तो न थे तथापि साधारण जनता में इसका प्रचार-प्रसार पूर्ववत ही हो रहा था। काव्य-रचना के केन्द्र भी इस समय न तो विशेषतया राज-दरबारों में ही थे और न प्रमुख तीर्थ-स्थानों अथवा ऐसे ही अन्य स्थलों में ही रह गये थे। काव्य-रचना-केन्द्र इस समय प्रायः नगरों में बिखर चुके थे और काशी, कानपुर जैसे प्रमुख नगरों में कवियों के कुछ ऐसे संगठित समाज भी बन गये थे, जिनके द्वारा समय-समय पर कवि-सम्मेलनों के आयोजन किये जाते थे और कवि लोग उनमें उपस्थित होकर समस्या-पूर्ति के आधार पर मंजु मुक्तक रचनाओं द्वारा मनोरंजन करते थे। ऐसी समस्या-पूर्तियाँ प्रायः पुस्तकाकार प्रकाशित भी हो जाती थीं। यद्यपि ऐसी दशा के कारण काव्य-साहित्य का कोई सुन्दर प्रबन्ध न हो रहा था—न तो प्रबन्ध काव्य के ही क्षेत्र में और न मुक्तक काव्य में ही—तथापि काव्य-कला और समस्या-पूर्ति की प्रथा किसी रूप में जाग्रत अवश्यमेव थी। यह स्मरणीय है कि ऐसी दशा में कवियों के द्वारा काव्य-शास्त्र और छन्द-शास्त्र दोनों की मान-मर्यादा की यथेष्ट रक्षा अवश्य हो रही थी, किसी प्रकार भी न तो इनकी अवहेलना ही की गयी थी और न रचना-व्यवस्था ही विकृत हो रही थी।

इस काल में प्रायः भक्ति-काव्य की ही विशेष प्रबलता रही—और उसमें भी कृष्ण-काव्य का ही प्राधान्य रहा। राम-भक्ति और निर्गुण-काव्य एक प्रकार से शून्य से हो रहे। ऋतु-वर्णन और प्रकृति-चित्रण की ओर अवश्यमेव पर्याप्त ध्यान दिया गया। इन दोनों क्षेत्रों में भी कोई मंजु मौलिक विशेषता का समावेश न हो सका; प्रायः प्राचीन परिपाटी के आधार पर अलंकार योजना के साथ साधारण अलंकृत-वर्णन ही किया जाता रहा। यह अवश्यमेव ध्यान देने के योग्य है कि भारतेन्दु बाबू और उनके कुछ अनुयायी मित्रों ने काव्य-क्षेत्र में एक नूतन शैली के प्रचार करने का प्रयत्न किया। काव्य के प्रबन्ध और मुक्तक नामक जो भेद किये गये हैं, उनमें से किसी के भी अन्तर्गत इस

नयी शैली के काव्य को नहीं रक्खा जा सकता। इसीलिए हम इसे 'निबन्ध-काव्य' की संज्ञा देते हैं। इससे हमारा तात्पर्य ऐसी काव्य-रचना से है, जिसमें कवि किसी एक विषय पर निबन्ध के रूप में अपने भावों और अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त किया करता है। भारतेन्दु बाबू का यमुना-वर्णन इस प्रकार के निबन्ध-काव्य का अच्छा उदाहरण है।

इस प्रकार की काव्य-रचना के भी मुख्यतया निम्नांकित रूप होते हैं:—

अलंकृत—जिसमें कवि वर्ण्य वस्तु का वर्णन कल्पना-सम्बन्धी उत्प्रेक्षा, सन्देह, रूपक आदि अलंकारों के आधार पर करता है। इसमें वस्तु-वर्णन तो प्रायः गौण सा किन्तु कल्पना-कौशल और अलंकार-चमत्कार प्रधान सा रहता है।

वर्णनात्मक—जिसमें कवि वर्ण्य वस्तु का वर्णन चित्रोपमता के साथ यथातथ्य रूप में करता है। इसमें प्रायः स्वाभावोक्ति की ही प्रधानता रहती है।

अन्योक्तिमूलक—जिसमें वर्ण्य वस्तु के वर्णन के द्वारा अभीष्ट अवर्ण्य वस्तु का ज्ञान कराया जाता है। इसमें प्रायः भाव की ही प्रधानता रहती है।

उक्त-वैचित्र्य-मूलक—जिसमें वर्ण्य वस्तु के सम्बन्ध में युक्ति-चमत्कार-चातुर्य्य-युक्त उक्ति-वैलक्षण्य अथवा कुतूहलकारी कथन-कौशल प्रकट करते हुए कवि अपनी वचन-विदग्धता का परिचय देता है।

यद्यपि और भी कई रूप इस प्रकार की रचना के देखे जाते हैं किन्तु वे इतने उल्लेखनीय, प्रचलित और प्रधान नहीं हैं। यद्यपि व्रज-भाषा-काव्य-क्षेत्र में यह नव-परिपाटी विशेष रूप से प्रचलित तो न हो सकी, किन्तु इसने खड़ी बोली के काव्य-क्षेत्र में इस प्रकार की रचना करने वालों के लिए पथ-प्रदर्शन का कार्य अवश्यमेव अच्छा किया।

इस काल में भक्ति-काल सम्बन्धी गीत-काव्य की परम्परा यद्यपि अच्छे रूप में आगे न बढ़ सकी, किन्तु उसका नितान्त लोप भी न हो सका और कवियों ने सुन्दर पदों की भी रचना की—यद्यपि अधिक मात्रा

में नहीं। कुछ कवियों ने तो स्त्री-समाज और गायक-समाज में भी गाये जाने के योग्य भिन्न-भिन्न प्रकार के रागों और विविध रागनियों वाले गीत (गायन) भी लिखे। उदाहरण में पंडित प्रताप नारायण मिश्र और पंडित बदरीनारायण चौधरी के गायन लिये जा सकते हैं। वस्तुतः यह कार्य भी आवश्यक और सराहनीय था, किन्तु खेद है, सफलता-पूर्वक और आगे न बढ़ सका।

इस काल में रीति ग्रन्थों की रचना का भी कार्य प्राचीन परिपाटी के आधार पर न्यूनाधिक रूप से चलता रहा—यद्यपि इसमें भी बहुत कुछ शिथिलता सी रही। कई रीति-ग्रन्थ इस समय में रचे तो गये, किन्तु उनमें कोई विशेष मौलिकता न आ सकी। थोड़े ही समय में पद्यबद्ध रीति-ग्रन्थों के स्थान पर गद्यात्मक रीति-ग्रन्थ तैयार हो चले। एक विशेष बात इस काल में यह और हुई कि लक्षण-ग्रन्थों के औदाहरणिक भागों में कुछ कवियों ने नूतनता का कुछ संचार किया—नायक-नायिका-भेद में कुछ नयी बातें समाविष्ट की गयीं। हरिऔध जी के द्वारा 'रस-कलस' में 'देश-प्रेमिका', 'समाज-सेविका' आदि नायिकाओं के नये भेद इसके उदाहरण हैं। इसी प्रकार इस काल में नाट्य-शास्त्र के नियम भी छन्द-बद्ध किये गये।* यह कार्य्य सम्भवतः पहले विशेष रूप में न हुआ था। इस प्रकार इस क्षेत्र में भी, कह कहते हैं कि, यदि अधिक संतोष-प्रद नहीं तो साधारणतया सुन्दर ही कार्य्य हुआ है।

इस काल में यों तो अन्य पूर्ववर्ती कालों की प्रमुख रचना-शैलियाँ न्यूनाधिक रूप में चलती ही रहीं, तथापि अधिक प्रचलित केवल कवित्त-सवैया-शैली, दोहा-शैली, रोला-शैली और विविध-छन्द-शैली ही विशेष रूप में रही हैं। इनमें से कवित्त-रचना-शैली में 'रत्नाकर' तथा 'सरस' जैसे कुछ कवियों ने नव्य विशेषता उत्पन्न की और कवित्त के पाठ-प्रवाह अथवा गति का ऐसा परिष्कार किया कि वह त्वरा गति और मन्थर गति दोनों में समान रूप से चल सके। कहना चाहिए कि इस काल में

---

* डक्टर 'रसाल'—कृत नाट्य-निर्णय उल्लेखनीय है।

तथा दोहा तीन छन्दों को अत्यधिक प्राचुर्य-प्राधान्य प्राप्त
: छन्द श्रुति-सुखद और मधुर होता हुआ भी इनके समत्त
त न हुआ। अच्छे-अच्छे कवियों ने भी इस छन्द का
उपयोग किया है।

ी विशेषता इस समय काव्य-क्षेत्र में यह देखी जाती
और मुक्तक नामक दोनों काव्यों को मिलाते हुए कवित्त-
एक ऐसी नवीन प्रकार की काव्य रचना शैली उठायी
एक साधारण घटना अथवा कथा भी चलती रहती है
का प्रत्येक कवित्त मुक्तक के समान सर्वथा स्वतः पूर्ण और
ता है। 'उद्धव-शतक' और 'अभिमन्यु-वध' इसके सुन्दर
।

ा में कुछ कवियों ने नन्ददास-कृत 'भँवर-गीत का भी सफल
था, परन्तु कुछ आधुनिकता के साथ। सत्यनारायण 'कवि-
रर-गीत' इसका अच्छा उदाहरण है। विविध छन्दात्मक
र अभी हाल ही में 'दैत्य-वंश' जैसी दो-एक पुस्तकें सामने
हें सफल प्रबन्ध-काव्य के अन्तर्गत रक्खा जा सकता है।
सतशती अथवा सतसई शैली, जो बीच में बहुत-कुछ रुक
इधर, नवल स्फूर्ति के साथ फिर आगे बढ़ी और इसके
ीर-सतसई' और 'ब्रज-सतसई' जैसी दो तीन प्रमुख सतसइयाँ
य-सदन में आ गयीं। साथ ही शतकद्वय और शतकत्रय
भी कुछ प्रचलित हुई और श्री दुलारेलाल जैसे दो-एक
सके आधार पर अपनी दोहावलियाँ प्रकाशित कीं। शतक-
ाधार पर इसी प्रकार 'उद्धव-शतक', अभिमन्यु-वध' जैसे
: न देकर सौ से कुछ अधिक छन्द देने की प्राचीन-परिपाटी
करते हुए) दो-एक सुन्दर काव्य लिखे गये।
साथ 'रत्नाकर' जी ने अष्टक और पंचक रचना-परिपाटियों
आठ और पाँच-पाँच कवित्तों के स्तवक बना भिन्न-भिन्न

विषयों पर रुचिर रचनाएँ कीं। किन्तु इस प्रकार की परिपाटियों का प्रचार अभी तक विशेष रूप से नहीं हो सका। व्रजभाषा की गीत अथवा पद-शैली का यद्यपि इस काल में इतना प्राचुर्य्य अथवा प्राबल्य नहीं रहा तथापि इसका नितान्त लोप भी नहीं हुआ। 'प्रेमघन', 'सत्यनारायण' और 'वियोगी हरि' आदि कवियों ने इस शैली में पर्याप्त तथा अच्छी रचनाएँ की हैं।

व्रजभाषा के कृष्ण-काव्य-क्षेत्र में आद्योपान्त प्रबन्ध-काव्य का एक प्रकार से अभाव सा ही रहा है। इस काल में कुछ कवियों ने इस ओर अच्छा ध्यान दिया है और कृष्ण-काव्यान्तर्गत लीला-काव्य की भी कतिपय सरस और सुन्दर रचनाएँ हुई हैं। यह अवश्यमेव सत्य है कि प्रधानता प्रायः मुक्तक-काव्य की ही रही है।

कृष्ण-काव्य में उद्धव-गोपी संवाद एक बहुत ही महत्वपूर्ण और प्रमुख-प्रसंग रहा है, क्योंकि इसी के अन्दर वैष्णव-सिद्धान्त तथा भक्ति-सिद्धान्त का बड़ी मार्मिकता और रसात्मिकता के साथ विवेचन और स्पष्टीकरण किया गया है। हिन्दी-कृष्ण-काव्य का यह प्रसंग यद्यपि विशेष तया भागवत पर ही समाधारित है, तथापि इधर के कुछ कवियों ने इस में आध्यात्मिकता तथा तार्किकता को समुन्नत करते हुए बहुत-कुछ मौलिकता के समावेश करने का प्रशस्त प्रयत्न किया है। यह मौलिकता अधिकांश में यद्यपि भाव-प्रकाशन रीति में ही पायी जाती है तथापि इस का यह तात्पर्य्य नहीं कि वर्ण्य वस्तु अथवा विषय के आकार-प्रकार अथवा रूप-रंग में केवल प्राचीन परम्परा का ही न्यूनाधिक अन्धानुकरण किया है, वरन् कह सकते हैं कि वर्ण्य विषय में सैद्धान्तिक विशेषता लाते हुए भी उसे नव परिधानों से सुसज्जित कर दिया है। तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर यह बात सर्वथा स्पष्ट हो जायगी। प्राचीन कवियों के द्वारा जो कुछ इस विषय पर लिखा गया है उसे ध्यान में रखते हुए यदि 'रत्नाकर' और 'सत्यनारायण' की एतद् विषयक रचनाएँ देखी जायँ तो यह ज्ञात होगा कि इनके जैसे कवियों के द्वारा इधर की ओर बड़े वाग्वैदग्ध्य के

साथ भावों और भावनाओं में भी नूतनता का संचार किया गया है*।

इसी के साथ यह भी कहना यहाँ अप्रासंगिक न होगा कि डाक्टर त्रिपाठी जैसे पंडित कवियों ने कृष्ण-काव्य के उन अंशों और नायक नायिका-सम्बन्धी उन भावों और भावनाओं पर भी उस आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के साथ प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है जिसके कारण इधर के कुछ वे आलोचक अन्यथा कथन करते हैं जो इन मार्मिक रहस्यों से सर्वथा परिचित नहीं हैं †।

इस काल में जिस प्रकार खड़ी बोली के कवियों ने निबन्ध-काव्य-रचना की एक नयी परिपाटी चलाई उसी प्रकार और सम्भवतः सब से प्रथम ब्रजभाषा के कवियों ने उसी निबन्ध-काव्य की सुन्दर और सराहनीय रचना की। निबन्ध-काव्य से हमारा तात्पर्य्य उस काव्य से है जिसमें किसी प्राकृतिक दृश्य तथा वस्तु आदि पर कवि काव्योचित रूप-रंग के साथ पद्यात्मक निबन्ध या लेख सा लिखता है। पंडित श्रीधर पाठक की 'काश्मीर सुषमा', लाला भगवान दीन का 'रामगिर्य्याश्रम' और 'मेघस्वागत', सत्यनारायण जी का 'वसन्त-स्वागत' जैसी रचनाएँ इसके उदाहरण-स्वरूप में ली जा सकती हैं।

सूक्ष्म कहानी या सूक्ष्म कथा-काव्य—(Short Story-Poetry) की जो परिपाटी प्राचीन कवियों ने मुक्तक-काव्य के क्षेत्र में निखारी और बिखारी थी, उसी परिपाटी के आधार पर इस काल में भी अनेक कवियों ने सुन्दर रचनाएँ की हैं।

इस काल में भी यद्यपि सभी रसों पर न्यूनाधिक रूप में कवियों ने

---

*नोट—'रसाल जी' की इस विषय की रचनाओं में मार्मिक मौलिकता है और चातुर्य्य-चमत्कारमयी वचन-विदग्धता के साथ ही भावों में नवीनता तथा वर्णन विशेषता है।

†यद्यपि इस संग्रह में डाक्टर त्रिपाठी और डाक्टर रसाल की ऐसी रचनाएँ विशेषतया नहीं दी गयीं, क्योंकि वे गूढ़ और गम्भीर होने के कारण बी० ए० के विद्यार्थियों के लिए दुरूह और उत्कृष्ट हैं।

रचनाएँ की हैं, किन्तु प्राचीन सिद्धान्तानुसार प्रधानता और प्रचुरता प्रायः शृंगार, शान्त (भक्ति) और वीर रसों को ही मिली है। पूर्व काल में सतसई-शैली का उपयोग शृंगार, भक्ति और नीति-काव्य के ही क्षेत्रों में विशेष रूप से हुआ था, जिसके उदाहरण हैं:—तुलसीदास की दोहावली, बिहारी की सतसई और रहीम और वृन्द आदि की सतसइयाँ।

इस काल में कुछ कवियों ने तो इस शैली का उपयोग इसी रूप में किया, किन्तु अन्य कवियों ने अन्य रसों में भी सतसइयाँ लिखी हैं। वियोगीहरि ने वीर रस को प्रधानता देकर वीर-सतसई लिखी जो अपने ढंग की एक ही रचना है। पंडित रामचरित उपाध्याय की ब्रज-सतसई तथा दुलारेलाल की दोहावली भी इसी प्राचीन परिपाटी की सूचिका हैं। भूषण आदि ने पूर्व काल में वीर-काव्य को राष्ट्रीयता के रँग में रँगने का जो स्मरणीय और अनुकरणीय कार्य्य किया था; उसी का अनुसरण करते हुए इस काल में भी कुछ कवियों ने राष्ट्रीय वीर-काव्य लिखा है, जिसमें भूषण आदि की अपेक्षा आधुनिक राष्ट्रीय-भावना और स्वदेशानुराग का सच्चा और सुन्दर स्वरूप अधिक मिलता है।

इस काल के प्राथमिक भाग में तो प्रायः रचना-शैली और विचार-धारा में कोई भी विशेष परिवर्तन नहीं हुआ—प्रायः प्राचीन विषय प्रचलित प्राचीन परिपाटी के ही आधार पर न्यूनाधिक विशेषता के साथ लिखे जाते रहे। बहुत कुछ अंशों में तो ऋतु-वर्णन, नायक-नायिका-चित्रण और भक्ति तथा धर्म-सम्बन्धी विचार कवियों के लिए व्यापक विषय से ही रहे और इन्हीं में थोड़े-बहुत अन्तर-प्रत्यन्तर के साथ कवि लोग अपनी-अपनी लेखनी चलाते रहे। काव्य-कला में भी उनके द्वारा कोई विशेष नव्य-भव्य कौशल न विकसित किया जा सका। इसीलिए भाव, कल्पना और कला-कौशल की दृष्टि से भी तत्कालीन रचनाएँ बहुत साधारण श्रेणी की ही ठहरती हैं। बहुतों में तो प्राचीन परम्परागत प्रचलित भावों का पिष्टपेषण मात्र ही है; किन्तु इधर की ओर 'रत्नाकर', आदि कवियों के द्वारा काव्य में अवश्यमेव-भावोत्कर्ष की वृद्धि हुई है और साथ

न्ही काव्य-कला-कौशल की भी सफल सिद्धि से उसकी समृद्धि बढ़ी है।

उक्ति-वैचित्र्य और वाग्वैदग्ध्य के साथ ही साथ इन कवियों के द्वारा काव्य में विशद-व्यंजकता और रचना-रंजकता का भी सराहनीय समावेश किया गया है। अर्थ-गाम्भीर्य्य तथा कोमलकान्त पद-लालित्य की ओर भी इधर के कवियों ने अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया है। न केवल इन का ध्यान काव्य की रसात्मिकता के द्वारा रागात्मिक वृत्ति के उत्तेजित करने की ओर ही रहा है वरन् अलंकार आदि के चारु-चमत्कार-चातुर्य्य से कौतुक-कुतूहल-प्रियता की मनोवृत्ति के भी उद्दीप्त करने तथा तज्जन्य आनन्द की ओर ले चलने की ओर भी बढ़ा है।

इसके साथ ही भावों की सूक्ष्मता, विचारों की गूढ़ता या गम्भीरता और सैद्धान्तिक मार्मिकता से काव्य को अत्युत्कृष्ट बनाने की ओर भी ऐसे कवियों ने सफल और सराहनीय प्रयत्न किया है। हिन्दी और संस्कृत के काव्यों की परम्पराओं को लेते हुए भी इधर के कवियों ने अन्य (अँगरेज़ी, उर्दू, फारसी आदि) साहित्य की भी ऐसी विशेषताओं से लाभ उठाने का उद्योग किया है, जो हिन्दी-साहित्य में सब प्रकार अबाध रूप से सरलतया समाविष्ट की जा सकती हैं और उसमें अधिक रम्यता तथा भावगम्यता भी ला सकती हैं।

इसी से सम्भवतः कवियों के प्राचीन काव्य-कौतुक के लाने का (जिसका मुख्य उद्देश्य कुतूहलानन्द का देना ही है) विशेष अवसर नहीं प्राप्त हो सका। कदाचित् ही किसी कवि ने कूट-काव्य और चित्र-काव्य की मौलिक रचना की ओर सफल प्रयत्न किया हो। प्रायः भाव, भावना और कल्पना के कौशलों को नये ढंग और नये रंग से प्रकाशित करने की ओर ही कवियों का विशेष ध्यान रहा है। कुछ कवियों ने वर्णनात्मक और कथात्मक-काव्यों में भी सफलता पायी है, किन्तु यह दोनों क्षेत्र भी विशेषतया अधिक हरे-भरे नहीं हो सके।

इस काल में प्रकृति-चित्रण की प्राचीन-परिपाटियों के साथ ही साथ 'रत्नाकर' जैसे कुछ सत्कवियों ने उसमें आधुनिकता और नूतन मौलि-

कता का भी अच्छा संचार किया है। ऋतु-वर्णन की परिपाटी इस काल के पूर्वार्ध में तो प्रायः प्राचीन रूप से ही चलती रही, किन्तु प्राकृतिक दृश्यों, स्थलों और वस्तुओं आदि का आलम्बन के रूप में भी श्रीधर पाठक, लाला भगवानदीन, रत्नाकर और सत्यनारायण जैसे, कुछ कवियों ने अच्छा चित्रण किया है।

वर्तमान काल की कुछ नयी पद्धतियों और विचार-धाराओं को भी इधर के कतिपय सुकवियों ने सुचारुता से निखारते और बिखारते हुए ब्रज-भाषा के काव्य-क्षेत्र में अनुकरणीय रंग-ढंग से उपस्थित किया है। रहस्यवाद, प्रतिबिम्बवाद और छायावाद के वास्तविक-मर्मों को लेते हुए 'हरिऔध' जैसे, कुछ कवियों ने बड़ी सुन्दर रचनाएँ की हैं। आध्यात्मिक और दार्शनिक-सिद्धान्तों को मंजुल मार्मिकता के साथ तार्किक रूप में मौलिकता लाते हुए मिश्र-बन्धुओं और डाक्टर त्रिपाठी जैसे कवियों ने चारुता और चतुरता से काव्य के क्षेत्र में आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया है।

भाषा—इस प्रकार संक्षेप में आधुनिक-ब्रजभाषा-काव्य के भाव-पक्ष और कला-पक्ष पर विचार कर चुकने के बाद यहाँ एतत्कालीन ब्रज-भाषा के रूप की ओर भी अंगुल्या-निर्देश कर देना अनुपयुक्त न होगा। भारतेन्दु के पश्चात् उनके समकालीन तथा अनुयायी कवियों ने ब्रज-भाषा-में कोई विशेष परिष्कार अथवा परिमार्जन नहीं किया। न तो उन्होंने उसमें साहित्यिक सौष्ठव तथा समुत्कर्ष के बढ़ाने का ही अधिक प्रयत्न किया और न उसे आधुनिक भाव-व्यंजनोचित बनाने का ही विशेष उद्योग। उसमें एकरूपता के लाने की ओर भी उनका विशेष ध्यान नहीं रहा; किन्तु उसकी सरलता, स्पष्टता और सुबोधता की ओर वे विशेष प्रयत्नशील होते हुए प्रतीत होते हैं।

उत्तरकालीन ब्रजभाषा में दो अत्यन्त प्रमुख विशेषताएँ उत्पन्न की गयी हैं और उन विशेषताओं से ब्रजभाषा को जो विशेष प्रकार का गौरव प्राप्त हुआ है वह प्रथम तो यह है कि उत्तर कालीन ब्रजभाषा में प्रायः इधर के सभी उत्कृष्ट कवियों द्वारा संस्कृत शब्दों की विशेषतया योजना

की गयी है, जिससे भाषा बहुत-कुछ उत्कृष्ट, साहित्यिक और स्थायी सी हो गयी है—उसमें गम्भीरता और गूढ़ता आ गयी है—और संस्कृत के समान सुपवित्र शिष्ट-सेव्य और पंडित-पूज्या सी हो गयी है। इससे अन्य प्रान्तों में भी इसके पुनः सुप्रचालित होने की सम्भावना अधिक हो गयी है। श्रीधर पाठक, 'हरिऔध', 'रत्नाकर', आदि सुकवियों की व्रज-भाषा इसके उदाहरण में रखी जा सकती है।

पूर्व और उत्तर कालों के मध्य में भाषा-मिश्रण-परिपाटी की जो प्रधानता और प्रचुरता हुई भी वह अब तक कवियों के एक विशिष्ट समाज में चलती ही रही है। इससे यद्यपि भाषा को विशदता तो प्राप्त होती है किन्तु उसकी विशुद्धता को आघात भी पहुँचा है। इस परि-पाटी के आधार पर चलने वाली व्रजभाषा को हम मुख्य दो रूपों में रख सकते हैं :—

एक तो व्रजभाषा का वह रूप है जिसमें खड़ी बोली के भी शब्द (क्रिया-पद आदि) तथा प्रयोग स्वतन्त्रता से प्रयुक्त होते हैं। ऐसी भाषा 'बचनेश' और 'सनेही', जैसे सुकवियों की रचनाओं में मिलती है।

दूसरा व्रजभाषा का वह रूप है जिसमें अवधी तथा अन्य प्रान्तीय बोलियों के पद और प्रयोग भी व्यवहृत किये जाते हैं। ऐसा स्वरूप 'द्विजेश', 'द्विजश्याम' और 'अम्बिकेश' जैसे सुकवियों की रचनाओं में मिलता है।

'रत्नाकर' जी और उन्हीं के साथ 'रसिक-मंडल' के सुकवियों ने व्रजभाषा की विशुद्धता और एकरूपता की ओर विशेष ध्यान दिया है। यद्यपि 'रत्नाकर' जी की भाषा में भी कुछ पूर्वीय-प्रयोग पाये जाते हैं, फिर भी उनकी भाषा अपने एक नये साँचे में ढली हुई है। भाषा-प्रयोग के विचार से इस समय के कवियों को हम इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं :—

राज-दरबारी कवि—जिनकी भाषा में प्राचीनता की पूरी झलक के साथ ही प्रान्तीयता का भी प्राधान्य रहता है और उसमें बहुत-कुछ

रजवाड़ी प्रयोग पाये जाते हैं। बिजावर के राज-कवि 'बिहारी', सीतामऊ-नरेश, झालावाड़-नरेश, रीवाँ के रामाधीन आदि की भाषा में इसके उदाहरण अधिक मिलते हैं।

स्वतन्त्र कवि—इनमें दो मुख्य दल हैं। एक दल तो 'रत्नाकर' 'रसाल', डाक्टर त्रिपाठी, श्रीधरपाठक आदि नवीन-शिक्षा-प्राप्त सुकवियों का है, जिसकी भाषा साहित्यिक सौष्ठव-समन्वित और समुत्कृष्ट रहती हैं। दूसरा दल उन सुकवियों का है जो नवशिक्षा-दीक्षा-दीक्षित न होकर प्राचीन पंडिताऊ पद्धति से पढ़े और कढ़े हुए हैं। इसलिए इस दल के कवियों की भाषा बहुत कुछ प्राचीन-शैली के ही साँचे में ढली सी रहती हैं। इन दोनों दलों के बीच में एक कवि-दल ऐसा भी है जिसमें दोनों दलों की विशेषताएँ आंशिक रूप में मिलती हैं।

व्रजभाषा-क्षेत्र में किसी अच्छे व्याकरण के न होने से प्रायः क्रियाओं और कारकों के रूपों और प्रयोगों में बहुत-कुछ गड़बड़ी मिलती है। क्रियाओं में अनिश्चित बहुरूपता विशेष रुप से देखी जाती है। उदाहरणार्थ 'देना' क्रिया के सामान्यभूत काल में दीन्ह्यों, दीन्हों, दयों, दीनों, दिया आदि रूप स्वतन्त्रता से चल रहे हैं। ऐसी स्वच्छन्दता और अनिश्चित बहुरूपता 'रत्नाकर' आदि सुकवियों की भाषाओं में नहीं मिलती। इसी प्रकार कारकों के प्रयोगों में भी बड़ी अव्यवस्था सी फैली हुई है। कर्त्ता का 'ने' चिह्न, जिसका प्रयोग प्रायः शुद्ध साहित्यिक-व्रजभाषा में कदापि नहीं होता अब प्रायः स्वच्छन्दता से प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार कर्म के 'कौ', तृतीया के 'सौं', चतुर्थ के 'कौं' षष्ठी के 'कौ' और अधिकरण के 'मैं' के स्थानों पर कवि लोग खड़ी बोली के प्रचलित रूप इच्छानुसार प्रयुक्त करते हैं।

व्याकरण व्यवस्था के लिए 'रत्नाकर' जैसे सुकवियों का कार्य वस्तुतः सराहनीय है। इसी के साथ ही संस्कृत और फारसी आदि के शब्दों को व्रजभाषा-पद्धति के अनुसार देशज रूप न देकर उनके तत्सम या मूल रुपों में ही प्रयुक्त करने की अभिरुचि प्रायः कवियों में देखी जाती है।

इसी प्रकार कारकों की विभक्तियों को शब्दों के साथ और शब्दों से पृथक रखने की भिन्न-भिन्न शैलियाँ भी अब तक उसी प्रकार अनिश्चित रूप से चल रही हैं।

निष्कर्ष यह है कि भाषा के परिष्कार, स्थैर्य्य और नियन्त्रण की ओर अद्यावधि यथेष्ट रूप में कार्य नहीं हो सका। इसमें सन्देह नहीं कि 'रत्नाकर' और उनके साथ के कवियों ने इसके लिए स्तुत्य कार्य किया है; इसके लिए आवश्यकता अब केवल कवियों के संगठित होकर मतैक्यस्थिरता और सहकारिता की ही है।

सम्पादन के सम्बन्ध में—यद्यपि आधुनिक व्रजभाषा कवियों के एक सर्वांगपूर्ण सुन्दर-संग्रह के उपस्थित करने का विचार हमारे मन में बहुत पहले से ही था, किन्तु वह कार्य अनेक कारणों से अब तक पूरा न हो सका—हाँ, यद्यपि इसके लिए आवश्यक सामग्री अवश्यमेव एकत्रित हो चुकी है। कुछ वर्ष पूर्व हमारे सम्मुख एक दूसरा विचार इस रूप में आया कि विश्व विद्यालयों के विद्यार्थियों को आधुनिक खड़ी बोली-काव्य से परिचित कराते हुए आधुनिक व्रजभाषा-काव्य का भी परिचय देना समीचीन है। अतः उस संग्रह के कार्य को स्थापित कर इस विचार से ही प्रथम यह संग्रह यहाँ उपस्थित किया जा रहा है। इसमें इसीलिए आधुनिक व्रजभाषा के केवल ऐसे ही चुने हुए कवि रक्खे गये हैं, जिन के स्थान बहुत-कुछ साहित्य-क्षेत्र में निश्चित हो चुके हैं और जिन्हें प्रतिनिधियों के रूप में लिया जा सकता है। इस सम्बन्ध में मत-भेद हो सकता है और उसका होना स्वाभाविक ही है, किन्तु हमने यहाँ अपना एक विशेष दृष्टि-कोण रक्खा है।

दूसरा विचार इसमें यह रहा है कि जहाँ तक हो सके उन्हीं कवियों को यहाँ लिया जाय, जिनके काव्य-ग्रन्थ प्रायः साहित्य-संसार में आ चुके हैं, जो प्रसिद्ध तथा सुपरिचित हैं। एक अच्छी संख्या इस समय व्रज-भाषा-कवियों की ऐसी भी है, जिनकी रचनाएँ कवि-सम्मेलन आदि के अवसरों पर तो सुनने को मिलती हैं; किन्तु पुस्तक-रूप में वे अब तक

नहीं आ सकीं। ऐसी अवस्था में यह अधिक उपयुक्त नहीं जान
कि विश्व-विद्यालय विद्यार्थियों को ऐसे कवियों की, जिनका
किंचित्मात्र भी परिचय प्राप्त नहीं है, केवल थोड़ी-सी रचनाएँ देक
छोड़ दिया जाय। साथ ही विद्यार्थियों के समय और पाठ्य-क्रमादि
भी ध्यान रखते हुए यही उचित जान पड़ा कि उन्हें केवल कुछ सु
और सुपरिचित प्रतिनिधि कवियों की चुनी हुए रचनाएँ देकर ही
निक व्रज-भाषा की प्रगति से परिचित कराया जाय।

इस संग्रह में यह भी ध्यान देने की बात थी कि अधिकतः
कवि और उनकी वे ही रचनाएँ रक्खी जायँ, जिनकी भाषा यदि
नहीं तो अधिकांश में विशुद्ध, संयत और उत्कृष्ट-साहित्यिक रूप की
न्वित व्रजभाषा हो। मिश्रित व्रजभाषा की रचनाएँ इसीलिए छोड़ दी
हैं, यद्यपि उनमें से बहुत-सी बड़ी ही सुन्दर और उच्चकोटि की

रचनाओं के संकल्प में यहाँ विशेषतया निम्नांकित बातों पर
ध्यान रक्खा गया है :—

(१) संकलित रचनाएँ सर्वथा ऐसी हों जो लड़कों और लड़
को समान रूप में निस्संकोच पढ़ायी जा सकें। अतएव अधिक शृंगा
की रचनाएँ, यद्यपि वे बहुत-कुछ उच्चकोटि की भी हैं, यहाँ नहीं
सकीं। फिर भी शृंगार-रस को नितान्त तिलांजलि भी नहीं दी गयी

(२) यथासाध्य सभी प्रमुख-रसों और रचना-शैलियों को भी
स्थान देने का प्रयास किया गया है। साथ ही जो रचनाएँ यहाँ ली
हैं उनमें यह विचार भी रक्खा गया है कि वे अपने रचयिता की
साध्य सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ ही रहें। इस प्रकार इसमें शृंगार, वीर,
करुणा आदि सुप्रमुख रसों, काव्य के प्रमुख भेदों अर्थात् प्रबंध (
काव्य (निबन्ध, मुक्तक, धार्मिक दार्शनिक आदि और कवित्त,
दोहा (सतसई) भ्रमर-गीत, रोला आदि प्रमुख शैलियों के चुने
नमूने रक्खे गये हैं।

(३) इस बात पर भी पूरा ध्यान दिया गया है कि ऐसी ही

रचनाएँ यहाँ संकलित की जायँ जो बी ए० जैसी कक्षाओं के लिए उपयुक्त हों और उनमें कला काव्य-कौशल, भावोत्कर्ष, अर्थ-गौरव और विचार-गाम्भीर्य्य भी यथेष्ट मात्रा में हों; साथ ही इन संकलित रचनाओं के आधार पर आधुनिक व्रजभाषा-काव्य की प्रगति का यथाक्रम ऐतिहासिक-विकास भी देखा जा सके। इसके लिए कवियों के साहित्यिक महत्त्व, मूल्य और स्थानादि का विशेष विचार न करके उनके समयानुसार उन्हें यहाँ स्थान दिया गया है उनके महत्त्व और मूल्य आदि निर्धारण का कार्य्य पाठकों पर ही छोड़ दिया गया है और यही समुपयुक्त युक्तियुक्त भी प्रतीत [illegible] है।

(४) प्रत्येक कवि का सूक्ष्म, सचित्र परिचय देकर उसके रचना-कौशल पर भी संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालते हुए उसकी कुछ चुनी हुई रचनाएँ संकलित की गयी हैं; तदनन्तर अधिक अध्ययनाकांक्षियों के लिए उनके रचे हुए ग्रन्थों की तालिका भी अन्त में दे दी गयी है।

सम्पादन के करने में इस बात का भी ध्यान रक्खा गया है कि प्रत्येक कवि की भाषा, लेखन-शैली और शब्दों के रूप आदि ज्यों के त्यों ही रहें उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन या रूपान्तर न किया जाय, जिससे भाषा तथा लेखन-शैली के विविध रूपों तथा विकास का भी यथेष्ट परिचय प्राप्त हो सके—ठीक उसी प्रकार, जैसे भाव-धारा आदि का यथाक्रम विकास देखा जा सके।

आशा है पुस्तक अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकेगी और विद्यार्थियों के लिए उपयोगी ठहरेगी।

प्रयाग विश्वविद्यालय
शरद्-पूर्णिमा संवत् १९९९ } रामशंकर शुक्ल

—:*:—

नहीं आ सकीं। ऐसी अवस्था में यह अधिक उपयुक्त नहीं जान पड़ता कि विश्व-विद्यालय विद्यार्थियों को ऐसे कवियों की, जिनका उन्हें किंचित्मात्र भी परिचय प्राप्त नहीं है, केवल थोड़ी-सी रचनाएँ देकर ही छोड़ दिया जाय। साथ ही विद्यार्थियों के समय और पाठ्य-क्रमादि का भी ध्यान रखते हुए यही उचित जान पड़ा कि उन्हें केवल कुछ सुप्रसिद्ध और सुपरिचित प्रतिनिधि कवियों की चुनी हुए रचनाएँ देकर ही आधुनिक व्रज-भाषा की प्रगति से परिचित कराया जाय।

इस संग्रह में यह भी ध्यान देने की बात थी कि अधिकतः वे ही कवि और उनकी वे ही रचनाएँ रक्खी जायँ, जिनकी भाषा यदि सर्वथा नहीं तो अधिकांश में विशुद्ध, संयत और उत्कृष्ट-साहित्यिक रूप की नियन्त्रित व्रजभाषा हो। मिश्रित व्रजभाषा की रचनाएँ इसीलिए छोड़ दी गयी हैं, यद्यपि उनमें से बहुत-सी बड़ी ही सुन्दर और उच्चकोटि की भी हैं।

रचनाओं के संकल्प में यहाँ विशेषतया निम्नांकित बातों पर अधिक ध्यान रक्खा गया है :—

(१) संकलित रचनाएँ सर्वथा ऐसी हों जो लड़कों और लड़कियों को समान रूप में निस्संकोच पढ़ायी जा सकें। अतएव अधिक शृंगार-रस की रचनाएँ, यद्यपि वे बहुत-कुछ उच्चकोटि की भी हैं, यहाँ नहीं दी जा सकीं। फिर भी शृंगार-रस को नितान्त तिलांजलि भी नहीं दी गयी है।

(२) यथासाध्य सभी प्रमुख-रसों और रचना-शैलियों को भी यहाँ स्थान देने का प्रयास किया गया है। साथ ही जो रचनाएँ यहाँ ली गयी हैं उनमें यह विचार भी रक्खा गया है कि वे अपने रचयिता की यथासाध्य सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ ही रहें। इस प्रकार इसमें शृंगार, वीर, शान्त, करुण आदि सुप्रमुख रसों, काव्य के प्रमुख भेदों अर्थात् प्रबंध (कथा-काव्य (निबन्ध, मुक्तक, धार्मिक दार्शनिक आदि और कवित्त, सवैया, दोहा (सतसई) भ्रमर-गीत, रोला आदि प्रमुख शैलियों के चुने हुए नमूने रक्खे गये हैं।

(३) इस बात पर भी पूरा ध्यान दिया गया है कि ऐसी ही उत्कृष्ट

रचनाएँ यहाँ संकलित की जायँ जो बी ए० जैसी कक्षाओं के लिए उपयुक्त हों और उनमें कला काव्य-कौशल, भावोत्कर्ष, अर्थ-गौरव और विचार-गाम्भीर्य्य भी यथेष्ट मात्रा में हों; साथ ही इन संकलित रचनाओं के आधार पर आधुनिक व्रजभाषा-काव्य की प्रगति का यथाक्रम ऐतिहासिक-विकास भी देखा जा सके। इसके लिए कवियों के साहित्यिक महत्व, मूल्य और स्थानादि का विशेष विचार न करके उनके समयानुसार उन्हें यहाँ स्थान दिया गया है उनके महत्व और मूल्य आदि निर्धारण का कार्य्य पाठकों पर ही छोड़ दिया गया है और यही समुपयुक्त युक्तियुक्त भी प्रतीत होता है।

(४) प्रत्येक कवि का सूक्ष्म, सचित्र परिचय देकर उसके रचना-कौशल पर भी संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालते हुए उसकी कुछ चुनी हुई रचनाएँ संकलित की गयी हैं; तदनन्तर अधिक अध्ययनाकांक्षियों के लिए उनके रचे हुए ग्रन्थों की तालिका भी अन्त में दे दी गयी है।

सम्पादन के करने में इस बात का भी ध्यान रक्खा गया है कि प्रत्येक कवि की भाषा, लेखन-शैली और शब्दों के रूप आदि ज्यों के त्यों ही रहें उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन या रूपान्तर न किया जाय, जिससे भाषा तथा लेखन-शैली के विविध रूपों तथा विकास का भी यथेष्ट परिचय प्राप्त हो सके—ठीक उसी प्रकार, जैसे भाव-धारा आदि का यथाक्रम विकास देखा जा सके।

आशा है पुस्तक अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकेगी और विद्यार्थियों के लिए उपयोगी ठहरेगी।

प्रयाग विश्वविद्यालय
शरद्-पूर्णिमा संवत् १९९१ } रामशंकर शुक्ल

—:※:—

विषय-सूची

द्वितीय सप्तक

नामक एक मासिक, पत्रिका तथा 'नागरी-नीरद' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला। इनके ही माध्यम से इन्होंने अपने सामाजिक, साहित्यिक और राजनीतिक सिद्धान्तों के प्रचार का प्रयत्न किया।

हिन्दी के अतिरिक्त ये उर्दू में भी कविता करते थे। इसमें इन्होंने अपना उपनाम 'अब्र' रक्खा था। इनकी हिन्दी-गद्य शैली अलंकृत है, जिसमें कहीं-कहीं शब्दाडम्बर के कारण भाषा में स्वाभाविकता का अभाव अथच कृत्रिमता का समावेश हो जाता है। नाटकों में इनकी भाषा प्रायः उर्दू-मिश्रित हिन्दी है। यही बात इनकी पत्रकार-शैली के विषय में भी कही जा सकती है।

व्रजभाषा पर 'प्रेमघन' जी का अनन्य प्रेम था, इसलिए खड़ी बोली के काव्य का आन्दोलन इन्हें विशेष प्रभावित न कर सका। 'आनन्द अरुणोदय' के अतिरिक्त आप ने खड़ी बोली में कोई अन्य रचना नहीं की। ये नवीन परिस्थितियों के संघर्ष में जीवन-यापन करते हुए उन पर गम्भीर-चिन्तवन करने वाले कवि थे। भारत की दीन-हीन दशा पर अपने इतर समकालीनों की भाँति इन्होंने भी आँसू बहाये हैं। भारतीयों के उत्कर्ष पर इसी प्रकार ये प्रसन्न भी हुए हैं। इनकी कविताएँ प्रायः ऐसे सम-सामयिक विषयों पर होती थीं, जो तत्कालीन समाज की बदलती हुई प्रवृत्तियों के प्रति कवि की सहानुभूति सूचित करती हैं।

'प्रेमघन' जी नागरी-प्रचार और राष्ट्रीय महासभा के पक्के समथक थे।

मंगलाचरण

वारौं अंग-अंग-छवि ऊपर अनंग कोटि,
अलकन चारु, काली अवली मलिन्द की,
वारौं लाख चन्द वा अमन्द मुख-सुखमा पै,
वारौं चाल पै मराल गति हूँ गयन्द की;
वारौं 'प्रेमघन' तन-धन-गृह-काज-साज,
सरल समाज, लाज गुरु-जन-वृन्द की,
वारौं कहा और, नहिं जानौ बीर ! वापै अब,
मेरे मन बसी बाँकी मूरति गोविन्द की।

टेढ़ो मोर-मुकुट, कलंगी सिर टेढ़ी राजै,
कुटिल अलक मानौ अवली मलिन्द की,
लीन्हें कर लकुट कुटिल, करै टेढ़ी बातैं,
चलै चाल टेढ़ी मद-माते से गयन्द की;
'प्रेमघन' भौंह बंक, तकनि तिरीछी जाकी,
मन्द करि डारै सबै उपमा कबिन्द की,
टेढ़ो सब जगत जनात जब हीं सों आनि,
मेरे मन बसी बाँकी मूरति गोविन्द की।

नव नील नीरद-निकाई तन जाकी, जापै,
कोटि काम अभिराम निदरत वारे हैं,
'प्रेमघन' बरसत रस नागरीन-मन,
सनकादि-संकर हू जाको ध्यान धारे हैं;
जाके तेज-अंस दमकति दुति सूर-ससि,
घूमत गगन मैं असंख्य ग्रह-तारे हैं,
देवकी के बारे, जसुमति-प्रान-प्यारे, सिर
मोर-पुच्छवारे वे हमारे रखवारे हैं।

काली अलकावली पै मोर-पंख-छवि लखि,
बिलखि कराहैं ये कलाप मुरवान के,
पीत-परिधान-दुति दाव्यो दामिनी दुराय,
लखि मोतीमाल, दल भाजे बगुलान के;
'प्रेमघन' घनस्याम अति अभिराम सोभा,
रावरी निहारि लाजे घन असमान के,
गरजनि-मिस करैं दीनता-अरज, ढारैं,
अँसुवान-व्याज बारि-बिन्दु बरसान के।

पावस-प्रमोद

रट दादुर, चातक-मोरन-सोर, सुनैं सजनी! हियरे हहरैं,
जुरि जीगन-जोति-जमात अरी, बिरहागिन की चिनगीन झरैं;
'घन प्रेम' प्रिया नहिं आये चलौ, भजि भीतरैं काली घटा घहरैं,
लखि मैन-बहादुर, बादर के, कर सों चपला-असि छूटी परैं।

खिलि मालती-बेलि प्रफुल्ल कदम्बन पैं लपटी लहरान लगी,
सनकै पुरवाई सुगन्धि-सनी, बक-औलि अकास उड़ान लगी;
पिक, चातक, दादुर; मोरन की, कल बोल महान सुहान लगी,
'घन प्रेम' पसारत सी मन में, घन-घोर-घटा घहरान लगी।

चढ़ैं बक-औलि अनेकन व्योम, बिराजत सैन समान महान,
भरे 'घन प्रेम' रटैं कवि चातक, कूकि मयूर करैं जस गान;
छनै छन हीं छन-जोन्ह छुटै, छिति-छोर निसान-छटा छहरान,
बलाहक पै जनु आवत आज, है पावस भूपति बैठि बिमान।

चंचला चोखी कृपान वनी, अवली वगुलान की सैन रही जुर;
सारँग सारँग है सुर-नायक, जय-धुनि दादुर-मोरन को सुर;
वे 'घन प्रेम' पगी विरहीन पै व्याज लिये वरसा अति आतुर,
आवत, धावत वीरता धारि, भरे वदरा ये अनंग-वहादुर।

जेवर जराऊ जोति-जीगन जनात किल,
किंकिनी लौं कूकनि मयूरन की डार-डार,
सारी स्यामताई पै किनारी चंचला की लखि,
प्रेमी चातकन-गन दीनो मन वार-वार;
पुरवाई पवन प्रभाय छहराय छवि,
देखो तो दिखात और दुरत चन्द वार-वार,
वदन विलोकनि कों रजनी-रमनि वस,
'प्रेमघन' घूँघटैं रही है जनु टार-टार।

लहलही होय हरियारी हरि-यारी तैसें,
तीनों ताप ताप को सँताप करस्यो करै,
नाचै मन-मारे मोर मुदित समान जासों,
विषय-विकार को जवासो झरस्यो करै;
'प्रेम-घन' प्रेम सों हमारे हिय-अम्बर मैं,
राधा-दामिनी के संग सोभा सरस्यो करै,
घनस्याम सम घनस्याम निसि-वासर हू,
करुना-कृपा के वारि-वुन्द वरस्यो करै।

वर्षा-विनोद

आई पुरवाई की चलनि, चहँकार चारु,
चातक-चमू की निसि-द्यौस चारौ पहरन,
अम्बर उड़त बगुलान की अवलि, कुंज,
नाचि-नाचि मुदित मयूर लागे लहरन;
कलित कदम्बन सों लपटी लवंग-लता,
छिति छन-छन छन-छवि-छवि छहरन,
'प्रेमघन' मन उपजाय, सरसाय हिय,
घेरि घन सघन घनेरे लागे घहरन

अतसी-कुसुम सम सोभा मैं लसत विज्जु,
लता के वसत पट पीत अभिराम है,
अवली भली है बगुलान की विराज रही,
गर मैं मनोहर के मोतिन को दाम है;
'प्रेमघन' मधुर-मधुर धुनि गरजनि,
बाजत के बाँसुरी रसीली सुधा-धाम है,
रंचक निहारे चित चोरे लेत आली मेरी!
यह घनस्याम है कि वह घनस्याम है।

वसन्त-बहार

जाके बल सरल कँपायो जग-जन सोई,
पाय के वियोग-बिथा सिसिर समन्त की,
हाहाकार सोर चहुँ ओर सों करत घोर,
लीने धूरि आवत, उड़ावत दिगन्त की;

'प्रेमघन' अवलोकिये तौ वन-बागन में,
कुंज-तरु-पुंज छीनि छवि छविवन्त की,
तोरत पवन, झकझोरत लतान आज,
डोलै बावरी सी बनी बैहर बसन्त की।

रसाल की मंजुल मंजरी पै,
किलकारत कोकिल औ कल कीर,
परसारत सो 'घन प्रेम' रसै,
सुभ सीतल मन्द-सुगन्ध-समीर;
बस्यो वन-बागन बीच बसन्त,
रही छवि छाय वियोकियो बीर,
विकास प्रसूनन-पुंज तैं कुंज,
गलीन-गलीन अलीन की भीर।

मदमाते भिरे भँवरे भँवरीन, प्रसून मरन्द चुचातन सों,
किलकारत कोइलैं मंजु रसालन-मंजरी सोर सुहात न सों;
'घन प्रेम'-भरी तरु तैं लपटी, लतिका लदि नूतन पातन सों,
मन बौरैं न कैसे सुगन्ध-सने, इन बौरे बसन्त की बातन सों।

श्याम-सौन्दर्य्य

लखत लजात जलजात लोयननि जासु,
होत दुति मन्द मुख-चन्दहिं निहारी है,
रति मैं रती हूँ रति जाकी ना विरंचि रची,
सची-मेनका मैं ऐसी सुन्दरी सुधारी है;

पद

ऊधौ कहा कहौ उन कैसे ?

हा ! हा ! फेरि समुझि समुझावौ रहे, जहाँ जित जैसे.
जेहि विधि जो जाके हित भाख्यो उतनो ही वस वैसे;
वरसावत वतियन कों रस ज्यों वे, वरसावहु तैसे ?
भरी प्रेम घनस्याम 'प्रेमघन' रटत राधिका ऐसे।

ऊधौ बात कहो कछु नीकी !

सुन्दर स्याम मदन-मन मोहन माधव प्यारे पी की,
सानि सानि जनि ज्ञान मिलावहु, भाखी उनके जी की;
हम प्रेमिन तजि प्रेम-नेम नहिं भावतिं वतियाँ फीकी,
वरसावौ रस-प्रेम 'प्रेमघन' और लगै सब फीकी।

देखहु दिपति दीप दीवारी !

कातिक कृष्ण कुहू निसि मैं यह लागत कैसी प्यारी !
खेलत जुवा जुवन-जन जुवतिन सँग सब सुरति विसारी,
अंवर अमल, विमल थल-तल जगि जगमग जोति उजारी।
स्वच्छ सदन साजे, सज्जित ह्वै सोहत नर अरु नारी,
मिलि मित्रन सब घूमत इत उत छाई द्यूत-खुमारी;
छाई छवि वीथी-वजार मैं भई भीर वहु भारी,
मोल खिलौना मोदक लै कै देत बाल किलकारी;
श्री बदरी नारायन जाचक-जन जाँचत त्योहारी।

(प्रेमघन-सर्वस्व से)

———

श्री बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' के ग्रन्थ

काव्य-ग्रन्थ—अ—पद्य-काव्य—स्फुट रचनाएँ

ब—संगीत-काव्य—'संगीत-सुधा'

नाटक—भारत-सौभाग्य, प्रयाग-रामागमन, परांगना रहस्य महा-नाटक, वृद्ध-विलाप (प्रहसन)

गद्य-काव्य—स्वभाव बिन्दु-सौन्दर्य, विधवा-विपत्ति, वर्षा, कलम की कारीगरी

काव्य-संग्रह—'प्रेमघन-सर्वस्व'

श्री पंडित श्रीधर पाठक

आगरे के जौंधरी गाँव के एक सारस्वत ब्राह्मण-कुल में पंडित श्रीधर पाठक का जन्म संवत् १६१६ वि० में हुआ था। संस्कृत और अँगरेजी की शिक्षा प्राप्त करने के बाद आप सरकारी दफ़्तर में नौकर हो गये और अपनी योग्यता तथा कार्य-क्षमता से सैक्रेटेरियेट के एक विभाग में सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त हुए। पेंशन लेकर आप प्रयाग में ही रहने लगे थे और यहीं संवत् १६८५ वि० में आप का स्वर्गवास हुआ। आप हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति भी निर्वाचित हुए थे।

आपने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में कविताएँ लिखीं। खड़ी-बोली के ये अच्छे कवि कहे जा सकते हैं। 'एकान्तवासी योगी' (अनुवाद) 'जगत-सचाई सार' और

'स्वर्गीय-वीणा' में इन्होंने हिन्दी के लिए बिल्कुल नये ढंग से हृदय की स्वाभाविक और स्वच्छन्द पद्धति पर चलने वाली कविता का नमूना सामने रक्खा है। फिर बाद में आपने गोल्डस्मिथ के 'ट्रैवलर' नामक काव्य का भी अनुवाद खड़ी बोली पद्य में 'श्रान्त पथिक' के नाम से किया।

लेकिन खड़ी बोली से कहीं अधिक सरल रचना पाठक जी ब्रजभाषा में करते थे। गोल्डस्मिथ के दूसरे काव्य ग्रन्थ 'डेज़र्टेडविलेज' का अनुवाद 'ऊजड़-गाँव' के नाम से आपने ब्रजभाषा में ही किया। ऐसा ज्ञात होता है कि पाठकजी की चित्त-वृत्ति ब्रजभाषा के काव्य में अधिक रमती थी और ब्रजभाषा को ही वे सत्काव्योचित मानते थे।

आपको सरकारी काम से शिमला और नैनीताल में रहने तथा वहाँ के नैसर्गिक दृश्यों के देखने के अनेक अवसर प्राप्त हुए थे और इसीलिए आपका कवि-हृदय प्रकृति-सौन्दर्य का इतना प्रेमी हो गया था।

पाठक जी प्रकृति के सुखमय रूपों के वर्णन में बड़े पटु थे। इनका 'कश्मीर-सुषमा' नामक काव्य इसका-उदाहरण है। इनके समकालीनों में प्रकृति-वर्णन में कोई कवि इनसे आगे न था।

पाठकजी स्वतन्त्र विचार के काव्य-प्रणेता थे। अतः नये-नये छन्द, पद-विन्यास और वाक्य-विन्यास के प्रयोग हमें इनकी रचनाओं में बराबर मिलते हैं। कहीं-कहीं इनकी कविताओं में रहस्यपूर्ण संकेत भी मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए 'स्वर्गीय-वीणा' अवलोकनीय है।

पाठकजी अत्यन्त सरस-हृदयी कवि होने के साथ ही साथ समाज-सुधारक और स्वदेशानुरागी भी थे। शिक्षा-प्रचार और विधवाओं की दशा जैसे विषयों पर भी इन्होंने लेखनी परिचालित की है।

काश्मीर-सुषमा

प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति,
पल-पल पलटति भेस, छनिक छबि छिन-छिन धारति;
विमल-अम्बु-सर-मुकुरन मँह मुख-बिम्ब निहारति,
अपनी छबि पै मोहि आप ही तन-मन वारति;

सजति सजावति, सरसति, हरसति, दरसति प्यारी,
बहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्तरसारी,—
विहरति विविध-विलास-भरी जोवन के मद-सनि,
ललकति, किलकति, पुलकति, निरखति, थिरकति, बनि-बनि;

मधुर मंजु छवि-पुंज छटा छिरकति वन-कुंजन,
चितवति, रिझवति, लसति, हँसति, मुसिक्याति, हरित मन;
यह सुरूप-सिंगार रूप धरि-धरि बहु भाँतिन,
सर, सरिता, गिरि, सिखर, गगन, गह्वर, तरुवर, तृन;

पूरन करिबे काज कामना अपने मन की,
किंकरता करि रह्यौ प्रकृति-पंकज-चरनन की;
चहुँ दिसि हिम-गिरि सिखर, हरितमनि-मौलि-अवलि मनु
स्रवत सरित-सित धार, द्रवत सोइ चन्द्रहार जनु;

फल-फूलन छवि-छटा छई जो वन-उपवन की,
उदित भई मनु अवनि-उदर सों, निधि रतनन की;
तुहिन-सिखर, सरिता, सर, विपिनन की मिलि सो छबि,
छई मंडलाकार, रही चारिहुँ दिसि यों फबि—

मानहु मनिमय मौलि-माल आकृति अलबेली.
बाँधी विधि अनमोल गोल भारत-सिर सेली।
अरध चन्द्र सम सिखरसैनि कहुँ यों छवि छाई.
मानहुँ चन्दन-खोरि, गौरि-गुरु, खोरि लगाई।

पुनि तिन स्रेनिन बीच वितस्ता रेख जु राजति.
वैष्णव 'श्री' अरु शिव-त्रिशूल की आभा भ्राजति;
हिम-स्रेननि सों घिर्‌यो अद्रि-मंडल यह रूरो;
सोहत द्रोनाकार सृष्टि-सुखमा-सुख- पूरो;

बहु विधि दृश्य अदृश्य कला-कौशल सों छायो.
रत्तन-निधि नैसर्ग मनहु विधि दुर्ग बनायो;
अथवा विमल पटोरि विस्व की निखिल निकाई।
गुप्त राखिवे काज सुदृढ़ सन्दूक बनाई।

कै यह जादूभरो विस्व बाजीगर-थैली
खेलत में खुलि परी, सैल के सिर पै फैली?
पुरुष-प्रकृति कौ किधौं जबै जोबन-रस आयौ.
प्रेम-केलि, रस-रेलि करन रँग-महल-सजायो?

खिली प्रकृति-पटरानी के महलनि फुलवारी.
खुली धरी कै भरी तासु सिंगार-पिटारी?
कै यह विकसित ब्रह्म-बाटिका की कोउ क्यारी,
जोगि-राज ने यहाँ जोग-बल खैंचि उतारी?

है सामग्री-सहित भैरवी चक्र मझारी
परिकल्पित करि धरी सक्ति - पूजन की थारी?
किधौं चढ़ायौ धाता ने भारत के मस्तक,
मया-मरालिनि-रच्यौ चारु कुसुमन कौ गुच्छक?

काम-धेनु के रवि-हय की खुर-छाप सलौनी,
कै वसुधा पै सुधा-धार-ब्रह्म-द्रव-द्रौनी ?
परम पुरुष की पटरानी माया कौ स्यन्दन,
मंडप-छत्र उतारि धर्‌यौ, उतर्‌यौ कै नन्दन ?

कै जब लै सिव चले दक्ष-तनया के अंगन,
गिरि-शृङ्गन गिरि खिल्यौ प्रिया के कर कौ कंगन ?
विष्णु-नाभि तें उग्यौ सुन्यौ जो कमल सहसदल,
कै यह सोई सुभग स्वयम्भू कौ सुजन्म-थल ?

प्रकृति-नटी कौ पटी-रहित प्रगट्यौ नाटक-घर,
कै शिव-तन्त्र सटीक खुल्यौ विलसत टिखटी पर ?
कै त्रैलोक्य-विभूति-भारत अवधूतक-मंडल,
कै तप-पुंज-प्रसूत विस्व-सोभा-श्री-मंडल ?

सुर-पुर अरु सुर-कानन की सुठि सुन्दरताई,
त्रिभुवन मोहन-करनि कविन वहु वरनि सुनाई—;

सो सब कानन सुनी, किन्तु नैनन नहिं देखी,
जँह-तँह पोथिन पढ़ी, पै सु परतच्छ न पेखी;

सो कवियन जो कही कलित सुर-लोक निकाई।
याही को अवलोकि एक कल्पना बनाई—

सुर-पुर अरु कश्मीर दोउन में को है सुन्दर,
को सोभा कौ भौन, रूप कौ कौन समुन्दर ?
काकौ उपमा उचित दैन दोउन में काकी,
याकौं सुर-पुर की अथवा सुर-पुर कौं याकी ?

याकौ उपमा याही की मोहिं देत सुहावै,
या सम दूजौ ठौर सृष्टि में दृष्टि न आवै;
यही स्वर्ग, सुर-लोक, यही सुर-कानन सुन्दर,
यहिं अमरन कौ ओक, यहीं कहुँ बसत पुरन्दर !

सो श्रीधर-दृग-बसी प्रेम-अम्बुद रस-देनी,
पुन्य-अवनि, सुख-स्रवनि, अलौकिक-सोभा-सैनी;
पै सुजथारथ महिमा नहिं मोहिं शक्ति बखानन,
सहसा नहिं कहि सकहिं, रुकहिं, सहसन सहसानन;

कवि-गन कौं कल्पना-कल्प-तरु काम-धेनु सी,
मुनियन कौं तप-धाम, ब्रह्म-आनन्द-रेनु सी;
रसिकन कौं रस-थान, प्रान, सरबस, जीवन-धन,
प्रकृति प्रेमिनी कौं सुकेलि-क्रीड़ा-कलोल-बन ।

(काश्मीर सुषमा से)

पंडित श्रीधर पाठक के ग्रन्थ

काव्य-ग्रन्थ—काश्मीर-सुषमा, देहरादून, स्वर्गीय वीणा ।

काव्य-संग्रह—मनोविनोद, पद्य-संग्रह, जगत-सचाई-सार ।

अनुवाद—एकान्तवासी योगी, ऊजड़गाँव, श्रान्तपथिक, ऋतुसंहार ।

———

पंडित अयोध्यासिंह जी उपाध्याय "हरिऔध"

'हरिऔध' जी हमारे साहित्य के लब्ध-प्रतिष्ठ वयोवृद्ध महाकवि हैं। आपका जन्म वैशाख कृष्ण ३ सं० १९२२ को निजामाबाद (ज़िला आज़मगढ़) में हुआ। लगभग आधी शताब्दी से आप हिन्दी की सच्ची सेवा करते आ रहे हैं। काव्य-रचना का अभ्यास उपाध्यायजी ने अपने निवास-स्थान निज़ामाबाद में सिक्ख सम्प्रदाय के महन्त बाबा सुमेरसिंह के यहाँ प्रायः नित्य जुड़ने वाले कवि-समाज में किया। उसी समय आपने दो नाटक 'रुक्मिणी-परिणय" और "प्रद्युम्न-विजय व्यायोग" तथा तीन उपन्यास "वेनिस का बाँका", "ठेठ हिन्दी का ठाट" और "अध-खिला फूल" नाम से लिखे। इन उपन्यासों के द्वारा उपाध्याय जी ने यह दिखला दिया कि संस्कृत-गर्भित और ठेठ दोनों प्रकार की हिन्दी शैली पर इनका समान अधिकार है।

'हरिऔध' जी का मुख्य कार्यक्षेत्र खड़ी बोली-काव्य में ही रहा है। आपने "प्रिय-प्रवास" महाकाव्य की रचना खड़ी-बोली में उस समय की जिस समय उसमें कोई भी महाकाव्य न था। कहना न होगा कि उपाध्याय जी के इस ग्रन्थ ने हिन्दी वालों को मार्ग प्रदर्शित किया और खड़ी बोली की कविता को एक कदम और आगे बढ़ा दिया।

खड़ी-बोली के क्षेत्र में प्रतिष्ठा-प्राप्ति के पूर्व उपाध्याय जी ब्रजभाषा में काव्य-रचना का अच्छा अभ्यास कर चुके थे। इधर आपने फिर उस ओर ध्यान दिया है और ब्रजभाषा की रचनाओं का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ 'रस-कलश' नाम से निकाला है। इसके विषय रस, नायिका-भेद आदि हैं। इसमें नायिकाओं के कुछ नये भेद भी बतलाये गये हैं जो कवि की नवोद्भावना-शक्ति के परिचायक हैं। इसी ग्रन्थ से यहाँ कुछ अंश आगे उद्धृत किये गये हैं।

'हरिऔध' जी संस्कृत-गर्भित शैली को अपनाने से पहले ही उर्दू छन्दों तथा ठेठ हिन्दी में भी रचना कर चुके थे। इधर इनकी लेखनी से हमें 'बोल-चाल' 'चोखे-चौपदे' और 'चुभते चौपदे' जैसे ग्रन्थ मिले हैं, जिनके हर एक पद में कोई न कोई मुहावरा अवश्य है। इनकी भाषा साधारण बोलचाल की बामुहावरा खड़ी बोली है।

उपाध्याय जी का सबसे नया सफल सत्काव्य-ग्रन्थ 'वैदेही-वनवास' है। इसी के साथ आपका दूसरा सराहनीय ग्रन्थ 'पारिजात' है। उपाध्यायजी बहुमुखी प्रतिभा के विद्वान् हैं। साहित्य काव्य-शास्त्रादि के पूर्ण पंडित और प्रशस्त लेखक हैं। आलोचक भी आप उच्चकोटि के हैं। इस समय तो आप अप्रतिभ कवि और पंडित हैं।

स्तवन

कुंठित-कपालन की कालिमा कलित होति,
अवलोके सुललित लालिमा पदन की,
सुन्दर-सिँदूर, मंजु-गात सुख-वितरत,
दरत दुरित-पुंज दिव्यता रदन की;
'हरिऔध' सकल-असंगल विदलि देति,
मंगल-कलित-कान्ति मंगल-सदन की,
संकट-समूह-सिन्धु सिन्धुता-विलोपिनी है,
वन्दनीय-सिन्धुरता सिन्धुर-वदन की।

तुरत तिरोहित अपार-उर-तम होत,
पग-नख-तारक-प्रसून-जोति परसे,
रुचिर-विचार मंजु-साति बहु विलसत,
जन-अनुकूलता विपुल-वारि बरसे;
'हरिऔध' सब-रस-बलित बनत चित,
दयावान-मन के सनेह-साथ सरसे,
सकल-अभाव, भाव, भूति, भव-भूति होति,
भारती-विभूति भूतिमान-सुख दरसे।

सुकवि-समूह-मंजु-साधना-विहीन जन,
लोक-समाराधना को साज कैसे सजि है,
विभु की विभूति ते विभूतिमान बनि-बनि,
भव-साथ कूर क्यों सुभावना को भजि है;

पग ते गहति पग-पग पै पुनीत पथ
असर-निकर-काज कर ते करति है;
गाइ-गाइ गुन-गन-सुगुन-निकेतन के,
मंजु-बर लहि बर-बिरद-बरति है;
'हरिऔध' मानस मैं भूरि-कमनीय भाव,
भारत की बन्दनीय-भूति के भरति है,
सुनि-धुनि-धार को परसि उधरति बाल,
धरती की धूरि लै लै सिर पै धरति है।

कहाँ है मधुर-साम-गान मुखरित-भूमि,
बानी के बिलास की कहाँ है पूत-पुलिका;
कहाँ है सकल-रस सरस-सरोज-पुंज,
सुख-मूल-मानव-समाज-मंजु-अलिका?
'हरिऔध' भारत-बिभव-बर-बायु-बल,
बिकच-बनै न कैसे बाला-उर कलिका;
प्रेम-सुधा बिपुल-बिमुग्ध बसुधा मैं भरि.
कहाँ पै बजी है महा-मोहिनी मुरलिका?

धर्म-प्रेमिका

भजनीय-प्रभु के भजन किये भाव-साथ,
यजनीय-जन के यजन काज तरसे,
लोक अवलोकि पर-लोक-साधना मैं लगे,
बचे लोभ-मूल-लोक-लालसा-लहर से;
'हरिऔध' परम-पुनीत अंगना है होति,
बार-बार नैनन ते प्रेम-बारि बरसे;
धरम-धुरीन सहज-धारना के धरे,
पग धूरि धरम-धुरन्धर की परसे।

लालसा रखति है ललित-रुचि-लालन की,
लोक-हित-खेत की लुनाई ते लुनति है;
रुचिर-विचार-उपवन में विचरि चाल,
चावन के सुमन-सुहावन चुनति है;
'हरिऔध' आठौ जाम परम-अकाम रहि,
भुवनाभिराम-राम-गुनन गुनति है;
सुर-लीन मानस निकुंज माँहि प्रेम-रली,
मुरली-मनोहर की मुरली सुनति है।

भाल पे भलाई की विभूति-भल विलसति,
नीकी नीति निवसति नयन-निकाई में,
रसना सरस है, रहति राम-रस चाखि
लसति विमलता है लोचन-लुनाई में,
'हरिऔध' गरिमा ललित-गति में है लसी,
गुरुता विराजति है गात की गोराई में,
लोक-हित कामना सकल-काम में है कसी,
कमनीयता है वसी कामिनी-कमाई में।

रहस्यवादाष्टक

छवि के निकेतन अछूने-छिति-छोर माँहि,
काकी छवि-पुंजता छगूनी छलकति है,
वन-उपवन की ललामता ललाम ह्वै ह्वै,
काकी लखि ललित-लुनाई ललकति है?
'हरिऔध' काको हेरि पादप हरे हैं होत,
कुसुमाली काको अवलोकि पुलकति है.
कौन बतरैहै, बेलि माँहि काकी केलि होति,
कली-कली माँहि काकी कला किलकति है?

मन्द-मन्द सीतल-सुगन्धित-समीर चलि,
कत प्राणि-पुंज को पुलकि परसत है,
भूरि-अनुराग-भरी ऊषा को कलित अंक,
कत प्रति बार ह्वै सराग सरसत है?
'हरिऔध अन्त ना मिलत इन तन्तन को,
कत ह्वै सुहावनो दिगन्त दरसत है,
काकी सुधा-धार ते सुधाकर सरस बनि,
सारी बसुधा पै न्यारी-सुधा बरसत है?

लहलहे काको लहे उलहे-बिटप होत,
कासों हिले लतिका ललाम ह्वै-ह्वै हिलती;
काके गौरवन ते गौरवित ह्वै लसत गिरि,
धन-रासि धरा काके बल सों उगिलती?
'हरिऔध' होतो लोक मैं न लोक-नायक तौ,
कलिका कुसुम की बिलोकि काको खिलती,
दमक दिखात काकी दमकति-दामिनी मैं,
चाँदनी मैं, चन्द मैं, चमक काकी मिलती?

एक तिन ही ते है अनन्तता विदित होति,
पथ-रज-कन हूँ कहत 'नेति' हारे हैं;
सत्ता की महत्ता पत्ता-पत्ता है बताये देत,
काल की इयत्ता गुने लोमस बिचारे हैं;
'हरिऔध' अनुभूति-रहित बिभूति अहै,
बिभव-पयोधि-बारि-बिन्दु लोक सारे हैं;
भव-तन मैं हैं भूरि-भूरि रवि-सोम भरे,
बिभु रोम-रोम मैं करोरौं व्योम-तारे हैं।

देहिन को सुखित सनेहिन समान करि;
पंखे अति-मंजुल-पवन के हिलत हैं;
चन्द के मनोरम-करन ते अवनि-काज,
चाँदनी के सुन्दर बिछावने सिलत हैं;
'हरिऔध' कौन कहै काके अनुकूल भये,
सीपिन मैं मोती मनभावने मिलत हैं;
कीच माँहि अमल-कमल विकसित होत,
धूरि माँहि सुमन सुहावने खिलत हैं।

काल-अनुकूल कैसे कारज-सकल होत,
पिक कूके कैसे सारो ककुभ उमहतो;
विकसित कैसे होति कला कुसुमायुध की,
कैसे लहराति लता, पादप उलहतो;
'हरिऔध' हेतु-भूत सत्ता जो न कोऊ होति,
कुसुम-समूह कुसुमाकर क्यों लहतो;
चैहर क्यों डोलति वहन कै मरन्द-भार,
मलय-समीर मन्द-मन्द कैसे वहतो?

फूल खिले देखे के विलोके हरे-भरे तरु,
भूलि निज-भाव ललचाई ललकैं थकीं;
जो थल दिखातो लोक-लोचन छबीलो-लाल,
औ रे छवि देखि वाँ उमंग-छलकैं छकीं;
'हरिऔध' उत भाव-हित मैं लुकत हरि,
इत सुख-मुख-जोहि जोग-जुगतैं जकीं;
कित हैं लसे न, बिलसे न दृग सोहैं कबौं,
आँखि मैं बसे हूँ ना बिलोकि अँखियाँ सकीं।

बसि घर-बार मैं बिसारे घरबारिन को,
घरी-घरी बीच घेर-घारन के घेरे ते;
तम मैं उँजारो किये उर को उँजेरो लहि,
देखे जग-जीवन के जीवन को नेरे ते;
'हरिऔध' कहै भेद खुलत अभेद को है,
सारे फेर फारन ते मानस को फेरे ते;
कानन के कानन की बातन को कान करि,
आंखिन की आँखिन को आँख माँहि हेरे ते।

श्री अयोध्यासिंह जी उपाध्याय के ग्रन्थ

काव्य-ग्रन्थ—प्रेमाम्बु-नीरधि, प्रेमाम्बु-प्रवाह, प्रेमाम्बु-प्रस्रवण, प्रेम-प्रपंच, प्रेम पुष्पोपहार, काव्योपवन, ऋतुमुकुर, प्रिय-प्रवास, चुभते चौपदे, चोखे चौपदे, कल्पलता, बोल-चाल, पद्यप्रसून, पर्वप्रकाश, पारिजात, वैदेही वन-वास।

व्रजभाषा—रसकलस !

गद्य-ग्रन्थ—ठेठ हिन्दी का ठाट, अधखिला फूल।

अनूदित—वेनिस का बांका।

संग्रह—सरस-संग्रह, कबीर वचनावली।

इतिहास—हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास।

नाटक—रुक्मिणी परिणय, प्रद्युम्न-विजय व्यायोग।

श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

'रत्नाकर' जी का जन्म भाद्रपद शुक्ल ६, सं० १६२३ वि० को काशी में हुआ। आपका वंश मुगल-काल से बराबर प्रतिष्ठित और सम्पन्न रहा है। आपने बी० ए० पास करके फ़ारसी के साथ एम० ए० की तैयारी की। कतिपय कारणों से परीक्षा न दे सके और आवागढ़ राज्य में आप सेक्रेटरी के पद पर नियुक्त हुए। वहाँ से फिर डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के आदेशानुसार (जो आपके पिता के बड़े मित्र थे) अयोध्या नरेश के यहाँ प्राइवेट सेक्रेटरी के पद पर काम करने लगे। उनके स्वर्गवास के पश्चात्, उनकी

महारानी के भी प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। आप फारसी और उर्दू में भी रचना करते थे।

विख्यात 'सरस्वती' पत्रिका के प्राथमिक सम्पादक-मंडल में आप भी थे। ब्रजभाषा-काव्य के क्षेत्र में आपका बहुत ऊँचा स्थान है और ब्रज-भाषा के आप प्रकांड विशेषज्ञ और आधुनिक समय के ब्राजभाषा-कवियों में श्रेष्ठ, तथा काव्य-कला मर्म्मज्ञ माने गये हैं।

'गंगावतरण' और 'उद्धव-शतक' नामक आपके दो परमा-प्रशस्त काव्य-ग्रन्थ हैं। 'गंगावतरण' पर आपको अयोध्या की महारानी ने एक सहस्र और 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' ने अर्द्ध सहस्र से पुरस्कृत किया था। आप हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कलकत्ता-वाले अधिवेशन के सभापति

रहे। नागरी प्राचारिणी-सभा, हिन्दुस्तानी-एकेडेमी, रसिक-मंडल आदि कई संस्थाओं के आप सम्मानित सदस्य और संरक्षक भी रहे। आपने कई प्राचीन ग्रन्थों का सुन्दर सम्पादन भी किया। 'बिहारी-सतसई' पर आपकी 'बिहारी-रत्नाकर' नामक टीका श्रेष्ठ है। 'सूर सागर' का भी सम्पादन आपने बड़ी गवेषणा के साथ प्रारम्भ किया था, किन्तु आप उसे पूर्ण न कर सके।

प्राचीन-काव्य-ग्रन्थों की खोज में बड़ी उत्कट अभिरुचि थी। नन्द-दास के समस्त ग्रन्थों का आप सम्पादन करना चाहते थे और बड़ी खोज से आपने उसकी सामग्री भी एकत्रित की थी। खेद है कि आपकी असामयिक मृत्यु के कारण यह कार्य भी 'सूर-सागर' के समान न हो सका।

आपकी समस्त रचनाओं का संग्रह 'रत्नाकर' नाम से काशी की 'सभा' ने प्रकाशित किया है। आपका स्वर्गवास हरिद्वार में संवत् १९८९ वि० में हुआ।

गंगावतरण

तब नृप करि आचमन-मारजन सुचि रुचि-कारी,
प्रानायाम पुनीत साधि चित-वृत्ति सुधारी;
बहुरि अंजली बाँधि ध्यान बिधि कौ विधिवत गहि,
माँगी गंग उमंग-सहित पूरब प्रसंग कहि!

बद्ध-अंजली देखि भूप बिनवत मृदु बानी,
मुसकाने बिधि, आनि चित्त "चिल्लू-भर पानी";
लागे करन विचार बहुरि जग-हित-अनहित पर,
पाप-पुन्य फल-उचित-लाभ मरजाद-खचित पर।

पुनि गुनि वर वरदान आपनौ औ संकर कौ,
सगर-सुतनि कौ साप-ताप औ तप नर-पति कौ,
सुमिरि अखिल-ब्रह्मांड-नाथ मन, माथ नवायौ,
सब संसय करि दूरि गंग-देवौ ठिक ठायौ;

किये सजग दिग-पाल, व्याल-पति-हृदय दृढ़ायौ,
कोल, कमठ पुचकारि, भूधरनि धीर धरायौ;
स्वस्ति-मन्त्र पढ़ि, तानि तन्त्र मुद-मंगल-कारी,
लियौ कमंडल हाथ चतुर चतुरानन-धारी।

इत सुरसरि की धार धमकि त्रिभुवन भय-पागे,
सकल सुरासुर बिकल विलोकन आतुर लागे,
दहलि दसौं दिग-पाल विकल-चित इत-उत धावत,
दिग्गज दिग दन्तनि दबोचि दृग भभरि भ्रमावत;

नभ-मंडल थहरात, भानु-रथ थकित भयौ छन,
चन्द चकित रहि गयौ सहित सिगरे तारा गन;
पौन रह्यौ तजि गौन, गह्यो सब मौन सनासन,
सोचत सबै सकाइ—'कहा करिहै कमलासन।'

विन्ध्य-हिमाचल - मलय - मेरु - मन्दर - हिय हहरे,
ढहरे जदपि पतान, ठमकि तउ ठामहिं ठहरे;
थहरे गहरे सिन्धु पर्व विनहूँ लुरि लहरे,
पै उठि लहर-समूह नेकु इत-उत नहिं ढहरे।

गंग कह्यौ उर भरि उमंग "तो गंग सही मैं,
निज तरंग-बल जौ हर-गिरि हर-संग मही मैं;
लै स-वेग-विक्रम पताल-पुरि तुरत सिधाऊँ,
ब्रह्म-लोक कौं बहुरि पलटि कन्दुक-इव आऊँ।"

सिव सुजान यह जानि तानि भौंहनि मन माषे,
बाढ़ी - गंग - उमंग - भंग पर उर अभिलाषे;
भये सँभरि सन्नद्ध भंग कैं रंग रँगाए,
अति दृढ़ दीरघ सृंग देखि तापर चलि आए।

बाघम्बर कौ कलित-कच्छ कटि-तट सौं नाँध्यौ,
सेसनाग कौं नाग-बन्ध तापर कसि बांध्यौ;
व्याल-माल सौं भाल-बाल-चन्दहिं दृढ़ कीन्यौ,
जटा-जाल कौ झाल-व्यूह गह्वर करि लीन्यौ;

मुंड-माल, यज्ञोपवीत कटि-तट अटकाए,
गाड़ि सूल, सृंगी-डमरू तापर लटकाए;
वर बाँहनि करि फेरि चाँपि चटकाइ आँगुरिनि,
बच्छ स्थल उमगाइ, ग्रीव उचकाइ चाय-भिनि;

तमकि ताकि भुज-दंड चंड फरकत चित चोपे,
महि दबाइ, दुहुँ पाय कछुक अन्तर सौं रोपे;
मनु बल - विक्रम - जुगुल - खम्भ जग-थम्भन-हारे;
धीर-धरा पर अति गँभीर-दृढ़ता-जुत धारे।

जुगल कन्ध बल-सन्ध हुमकि हुमसाइ उचाए,
दोउ भुज-दंड उदंड तोलि, ताने, तमकाए;
कर जमाइ, करिहाइँ नैन नभ-ओर लगाए,
गंगागम की बाट लगे जोहन हर ठाए।

बल, विक्रम, पौरुप अपार दरसत अँग अँग तैं,
वीर, रौद्र दोउ रस उदार झलकत रँग रँग तैं;
मनहुँ भानु, सित-भानु-किरन-विरचित पट वर कौ,
झलक दुरंगी देति देह-द्युति सिव-शंकर

वचन-बद्ध त्रिपुरारि ताकि सन्नद्ध निहारत
दियौ ढारि विधि गंग-बारि मंगल उच्चारत;
चली विपुल-बल-बेग-बलित बाढ़ति अहद्रव,
भरिति भुवन भय-भार मचावति अखिल उपद्रव।

निकसि कमंडल तैं उमंगि नभ-मंडल खंडति,
धाई धार अपार बेग सौं वायु-बिहंडति;
भयौ घोर अति शब्द धमक सौं त्रिभुवन तरजे,
महा मेघ मिलि मनहुँ एक संगहि सब गरजे;

भरके भानु-तुरंग चमकि चलि मग सौं सरके,
हरके बाहन रुकत नैंकु नहिं बिधि-हरि-हर के,
दिग्गज करि चिक्कार नैन फेरत भय थरके,
धुनि-प्रतिधुनि सौं धमकि धराधर के उर धरके।

कढ़ि-कढ़ि गृह सौं बिबुध बिबिध जाननि पर चढ़ि-चढ़ि,
पढ़ि पढ़ि मंगल-पाठ लखत कौतुक कछु बढ़ि-बढ़ि;
सुर-सुन्दरी ससंक बंक दीरघ दृढ़ कीने,
लगीं मनावन सुकृत हाथ काननि पर दीने।

निज दरेर सौं पौन-पटल फारति, फहरावति,
सुर-पुर के अति सघन घोर घन घसि घहरावति;
चली धार धुधकारि धरा-दिसि काटति कावा,
सगर सुतनि के पाप-ताप पर बोलति धावा।

बिपुल बेग सौं कबहुँ उमँगि आगे कौं धावति,
सौ सौ जोजन लौं सुढार ढरतिहिं चलि आवति;
फटिक-सिला के बर बिसाल मन बिस्मय बोहत,
मनहुँ बिसद छद अनाधार अम्बर मैं सोहत।

भयौ हुतौ भ्रू-भंग-भाव जो भव-निदरन कौ,
तामैं पलटि प्रभाव पर्यौ हिय हेरि हरन कौ;
प्रगटत सोइ अनुभाव भाव औरै सुखकारी,
ह्वै थाई उतसाह भयौ रति कौ संचारी।

कृपा-निधान सुजान सम्भु, हिय की गति जानी,
दियौ सीस पर ठाम, बाम करि कै मनमानी;
सकुचति, ऐंचति अंग गंग सुख-संग लजानी,
जटा-जूट-हिम-कूट-सघन-बन सिमिटि समानी;

पाइ ईस कौ सीस-परस आनँद अधिकायौ;
सोइ सुभ सुखद-निवास बास करिबौ मन ठायौ,
कहूँ पौन-नट निपुन गौन को बेग उघारत,
जल कन्दुक के बृन्द पारि पुनि गहत, उछारत;

मनो हंस-गन मगन सरद-बादर पर खेलत,
भरत भाँवरै जुरत मुरत उलहत, अवहेलत।
कबहुँ वायु सौं बिचलि वंक-गति लहरति धावै,
मनहुँ सेस सित-बेस गगन तैं उतरत आवै;

कबहुँ फेन उफनाइ आइ जल-तल पर राजै,
मनु मुकतनि की भीर छीर-निधि पर छबि छाजै।
कबहुँ सुताड़ित ह्वै अपार-बल धार-वेग सौं,
छुभित पौन फटि गौन करत अतिशय उद्वेग सौं;

देवनि के दृढ़-जान लगत ताके झकझोरे,
कोउ आँधी के पोत होत कोउ गगन-हिंडोरे;
उड़ति फुही की फाब फबति, फहरति छबि-छाई,
ज्यौं परबत पर परत झीन बादर दरसाई;

तरनि किरनि तापर विचित्र बहु रंग प्रकासै,
इन्द्र धनुष की प्रभा दिव्य दसहूँ दिसि भासै;
मनु दिगंगना गंग न्हाइ कीन्हें निज अंगी,
नव-भूषन नव-रतन-रचित सारी सत रंगी;

गंगागम-पथ माँहि भानु कैधौं अति नीकी,
बाँधी बन्दनवार विविध बहु पटापटी की;
सीत, सरस सम्पर्क लहत संकरहु लुभाने,
करि राखी निज अंग गंग कैं रंग भुलाने;

बिचरन लागी गंग जटा-गह्वर-बन बीथिनि;
लहति सम्भु सामाप्य-परम-सुख दिननि निसीथिनि;
इहिं विधि आनन्द मैं अनेक बीते सम्बत्सर,
छाड़त छुवत न बनत ठनत नव नेह परस्पर;

यह देखि दुखित भूपति भये चित चिन्ता प्रगटी प्रबल,
अब काजै कौन उपाय जिहिं सुरसरि आवै-अवनितल।

द्रौपदी क्रन्दन

घूँटहिं हलाहल, कै बूड़ि हैं जलाहल मैं,
हम न कुनाम कौ कुलाहल करावैंगी;
कहै 'रतनाकर' न देखि पाइबे की तुम्हैं,
पीर हूँ गँभीर लिए संगही सिधावैंगी;
हाय ! दुरजोधन की जंघ पै उघारी बैठि,
ऐंठि पुनि कैसें जग आनन दिखावैंगी;
बार-बार द्रौपदी पुकारति उठाए हाथ,
नाथ होत तुम से अनाथ ना कहावैंगी।

बोलि उठे चकित सुरासुर जहाँ ही तहाँ,
'हा ! हा ! यह चार है कै धीर वसुधा कौ है,
कहै 'रतनाकर' कै' अम्बर दिगम्बर कौ,
कैधौं परपंच कौ पमार बिधिना कौ है ?'
कैधौं सेसनाग की असेस कंचुली है यह,
कैधौं ढंग गंग की अभंग महिमा कौ है ?,
कैधौं द्रौपदी की करुना कौ बरुनालय है,
पारावार कैधौं यह कान्ह की कृपा कौ है ?'

धरम-सपूत धरमध्वज रहे हैं वनि,
पारथ सकल पुरुषारथ बिसारे हैं;
कहै 'रतनाकर' असीम बल भीम हारे,
सूके सहदेव, भये नकुल नकारे हैं;
भीषम औ द्रोनहूँ निहारि मौन धारि रहे,
माप नाहिं ताकौ, ये तौ बिबस बिचारे हैं,
गालव यहै के हाथ हालत न रावरौ हूँ,
मानौ आप नाहिं दुख देखत हमारे हैं।

अम्बर लौं अम्बर अनन्त द्रौपदी कौ देखि,
सकल सभा की प्रतिभा यौं भई दंग है,
कोऊ कहै अन्ध-भूप-मोह-अन्ध नासन कौं
चारु चन्द्रिका की चली चादर अभंग है;
कोऊ कहै कुरु-कुल-रूप-पाप-खंडन कौं
उमड़ति अखिल अखंड धार गंग है;
मेरैं जान दीन-दुख-द्वन्द दरिबै कौं यह,
करुना-अपार-'रतनाकर'-तरंग है।

कैधौं पांडु-पूतनि कौ कछुक पखंड या मैं,
कोऊ अभिहार कै सभा कौ ज्ञान लूट्यौ है,
कैधौं कछु वाही कल-छल-'रत्नाकर' कौं,
नटखट नाटक इहाँ हूँ आनि जूट्यौ है;
कहत दुसासन उसास न सँभार्‌यौ जात,
साहस हमारौ जात सब विधि छूट्यौ है,
लागि गए अम्बर लौं अखिल अटम्बर पै,
द्रुपद-सुता कौ अजौं अम्बर न खूट्यौ है।

भीष्म-प्रतिज्ञा

भीषम भयानक पुकार्‌यौ रन-भूमि आनि,
छाई छिति छत्रिनि की गीत उठि जाइगी,
कहैं 'रतनाकर' रुधिर सौं रुँधैगी धरा,
लोथनि पै लोथनि की भाँति उठि जाइगी;
जीति उठि जाइगी अजीत पंडु पूतनि की,
भूप दुरजोधन की भाँति उठि जाइगी,
कैतौ प्रीति-रीति की सुनीति उठि जाइगी, कै
आज हरि-प्रन की प्रतीति उठि जाइगी ?

पारथ बिचारौ पुरुपारथ करैगो कहा,
स्वारथ-समेत परमारथ नसैहौं मैं,
कहै 'रतनाकर' प्रचार्‌यौ रन भीषम यौं,
आज दुरजोधन कौ दुख दूरि दैहौं मैं;
पंचनि कैं देखत प्रपंच करि दूरि सबै,
पंचनि कौ स्वत्व पंच तत्व मैं मिलैहौं मैं,
हरि-प्रन-हारी-जस धारि धरा ह्वै सान्त,
सान्तनु कौ सुभट सपूत कहवैहौं मैं।"

मुंड लागे कटन, पटन काल-कुंड लागे,
रुंड लागे लोटन निमूल कदलीनि लौं,
कहै 'रतनाकर' बिहुंड-रथ-बाजी-झुंड,
लुंड-मुंड लोटैं परि उछरि तिमीनि लौं,
हेरत हिराए से परस्पर संचित चूर,
पारथ औ सारथी अदूर दरसीनि लौं,
लच्छ-लच्छ भीषम भयानक के बान चले,
सबल सपच्छ फुफुकारत, फनीनि लौं;

भीषम के बाननि की मार इमि माँची गात,
एकहूँ न घात सव्यसाची करि पावै है;
कहै 'रत्नाकर' निहारि सो अधीर दसा,
त्रिभुवन-नाथ-नैन नीर भरि आवै है;
चहि-चहि हाथ चक्र ओर ठहि जात नीठि,
रहि-रहि तापै वक्र दीठि पुनि धावै है;
इत प्रन-पालन की कानि सकुचावै, उत
भक्त-भय-घालन की बानि उमगावै है।

छूट्यौ अवसान मान सकल धनंजय कौ,
धाक रही धनु मैं न साक रही सर मैं,
कहै 'रतनाकर' निहारि करुनाकर कैं,
आई कुटिलाई कछु भौंहनि-कगर मैं;
रोकि झर रंचक अरोक बर बाननि की,
भीषम यौं भाष्यौ मुसकाइ मन्द स्वर मैं.
"चाहत विजै कौं सारथी जौ कियौ पारथ तौ,
वक्र करौ भृकुटी न चक्र धरौ कर मैं।"

वक्र भृकुटी के चक्र-ओर चय फेरत हीं,
सक्र भए अक्र उर थामि थहरत हैं,
कहै 'रतनाकर' कलाकर अखंड मंडि,
चंडकर जानि प्रलै-खंड हहरत हैं;
कोल कच्छ-कुंजर कहलि हलि काढ़ैं खीस,
फननि फनीस कैं फुलिंग फहरत हैं,
मुद्रित तृतीय दृग रुद्र मुलकावैं मीड़ि,
उद्रत समुद्र अद्रि भद्र भहरत हैं।

जाकी सत्ता मैं जग-सत्ता कौ समस्त सत्व,
ताके तात्रि प्रन को अतत्त्व अकुलाए हैं,
कहै 'रतनाकर' दिवाकर दिवस ही मैं,
झप्यौ काँपि झूमत, नछत्र नभ छाए हैं;
गंगानन्द आनन पैं आई मुसकानि मन्द,
जाहि जोहि वृन्दारक-वृन्द सकुचाए हैं,
पारथ की कानि, ठानि भीषम महारथ की,
मानि जन विरथ रथांग धरि धाए हैं।

ज्यौं ही भए विरथ रथांग गहि हाथ नाथ,
निज प्रन-भंग को रह्यो न चित चेत है;
कहै 'रतनाकर' त्यौं संग ही सखा हूँ कूदि,
आनि अर्यौ सौंहै हा! हा! करत सहेत है;
कलित कृपा औ तृपा द्विमग समाहे पग,
पलक उठ्यौई रह्यौ पलक-समेत है;
धरन न देत आगैं अरुझि धनंजय औ,
पाछैं उसै भक्त-भाव परन न देत है।

('रत्नाकर' से)

ब्रज-स्मृति

बिरह-बिथा की कथा अकथ अथाह महा,
कहत बनै न जो प्रबीन सुकबीनि सौं ;
कहै 'रतनाकर' बुझावन लगे ज्यौं कान्ह,
ऊधौ कौं कहन-हेत ब्रज-जुवानि सौं ;
गहबरि आयौ गरौ भभरि अचानक त्यौं,
प्रेम पर्‌यौ चपल चुचाय पुतरानि सौं,
नेकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सौं,
रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकानि सौं।

नन्द औ जसोमति के प्रेम-पगे पालन की,
लाड़-भरे लालन की लालच लगावती ;
कहै 'रतनाकर' सुधाकर-प्रभा सौं मढ़ी,
मंजु मृग-नैननि के गुन-गन गावती ;
जमुना-कछारनि की, रंग-रस-रारनि की,
बिपिन-बिहारन की हौंस हुमसावती ;
सुधि ब्रज-बासिनि दिवैया सुख-रासिनि की,
ऊधो नित हमकौं बुलावन कौं आवती।

चलत न चार्‌यौ भाँति कोटिनि बिचार्‌यौ तऊ,
दाबि-दाबि हार्‌यौ पै न टार्‌यौ टसकत है ;
परम गहीली बसुदेव-देवकी की मिली,
चाह-चिमटी हूँ सौं न खैंचौ खसकत है ;
कढ़त न क्यौं हूँ हाय ! बिथके उपाय सबै,
धीर-आक-छीर हूँ न धारैं धसकत है,
ऊधौ ! ब्रज-बास के बिलासनि कौ ध्यान धँस्यौ,
निसि-दिन काँटे लौं करेजैं कसकत है।

रूप रस-पीवत अघात ना हुते जो तब,
सोई अब आँम ह्वै उनरि गिरिबौ करैं,
कहै 'रतनाकर' जुड़ात हुते देखैं जिन्हैं,
याद किएँ तिनकौं अँवाँ सौं घिरिबौ करैं;
दिननि के फेर सौं भयौ है हेर-फेर ऐसौ,
जाकौं हेरि-फेरि हेरिवाई हिरिबौ करैं,
फिरत हुते जू! जिन कुंजनि मैं आठौ जाम,
नैननि मैं अब सोई कुंज फिरिबौ करैं।

गोकुल की गैल-गैल, गैल-गैल ग्वालन की,
गोरस कैं काज लाज, बस कै बहाइबौ,
कहै 'रतनाकर' रिझाइबौ नवेलिनि कौ,
गाइबौ-गवाइबौ औ नाचिबौ नचाइबौ;
कीबौ स्नमहार मनुहार कै बिबिधि-बिधि,
मोहिनी मृदुल, मंजु बाँसुरी बजाइबौ,
ऊधौ सुख-सम्पति-समाज ब्रज-मंडल के,
भूलैं हूँ न भूलैं भूलै हमकौं भुलाइबौ।

मोर के पखौवनि कौ मुकट छबीलौ छोरि,
क्रीट मनि-मंडित धराइ करिहैं कहा?
कहै 'रतनाकर' त्यौं माखन सनेही बिनु,
षटरस-व्यंजन चवाइ करिहैं कहा?
गोपी-ग्वाल-बालनि कौं झौंकि बिरहानल मैं,
हरि सुर-वृन्द की बलाइ करिहैं कहा?
प्यारौ नाम गोविन्द-गुपाल कौ बिहाय हाय!
ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करिहैं कहा?

कहत गुपाल, माल मंजु मनि-पुंजन की,
गुंजनि की माल की मिसाल छवि छावै ना ;
कहै 'रतनाकर' रतन मैं किरीट अच्छ,
मोर-पच्छ-अच्छ-लच्छ-अंसहू सु भावै ना ;
जसुमति मैया की मलैया अरु माखन कौ;
काम-धेनु-गोरस हू गूढ़ गुन पावै ना ;
गोकुल की रज के कनूका और तिनूका सम,
सम्पति त्रिलोक की बिलोकन मैं आवै ना।

राधा मुख-मंजुल सुधाकर के ध्यान ही सौं,
प्रेम-'रतनाकर' हियैं यौं उमगत है ;
त्यौं ही बिरहातप प्रचंड सौं उमंडि अति,
ऊरध उसाँस कौ झकोर यौं जगत है ;
केवट विचार को बिचारौ पचि हारि जात;
होत गुन-पाल ततकाल नभ-गत है,
करत गँभीर धीर-लंगर न काज कछू,
मन कौ जहाज डगि डूबन लगत है।

सील-सनी सुरुचि सुबात चलैं पूरब की,
औरै ओप उमगी दृगनि मिदुराने तैं,
कहै 'रतनाकर' अचानक चमक उठी,
उर घनस्याम कैं अधीर अकुलाने तैं ;
आसाछन्न दुरदिन दीस्यौ सुर-पुर माँहिं,
ब्रज मैं सुदिन बारि-बृन्द हरियाने तैं,
नीर कौ प्रवाह कान्ह-नैननि कैं तीर बह्यौ,
धीर बह्यौ ऊधौ-उर-अचल रसाने तैं।

प्रेम-भरी कातरता कान्ह की प्रगट होत,
ऊधव अवाइ रहे ज्ञान-ध्यान सरके;
कहै 'रतनाकर' धरा कौ धीर धूरि भयौ,
भूरि-भीति-भारनि फनिंद-फन फरके;
सुर, सुर-राज सुद्ध-स्वारथ सुभाव-सने,
संसय समाय धाए-धाम विधि-हर के;
आई फिरि ओप ठाम-ठाम ब्रज-गामनि के,
बिरहिनि बामनि के बाम अंग फरके।

उद्धव-कथन

हेत-खेत माँहि खोद खाँई सुद्ध स्वारथ की,
प्रेम-तृन गोपि राख्यौ तापै गमनौ नहीं;
करनी प्रतीति-काज करनी बनावट की,
राखी ताहि हेरि हियैं हौंसनि सनौ नहीं;
घात मैं लगे हैं ये बिसासी ब्रजबासी सबै,
इनके अनोखे छल छन्दनि छनौ नहीं;
बारनि कितेक तुम्हैं बारन कितेक करैं,
बारन-उबारन ह्वै बारन बनौ नहीं।

पाँचौ तत्व माँहि एक सत्व ही की सत्ता सत्य,
याही तत्व-ज्ञान कौ महत्व स्रुति गायौ है;
तुम तौ बिवेक 'रतनाकर' कहौ क्यौं पुनि,
भेद पंच-भौतिक के रूप मैं रचायौ है;
गोपिन मैं, आप मैं, वियोग औ सँजोगहू मैं,
एकै भाव चाहिए सचोप ठहरायौ है;
आपु ही सौं आपु कौ मिलाप औ बिछोह कहा,
मोह यह मिथ्या सुख-दुख सब ठायौ है।

दीपत दिवाकर कौ दीपक दिखावैं कहा,
तुम सन ज्ञान कहा जानि कहिबौ करैं ?
कहै 'रतनाकर' पै लौकिक लगाव मानि;
मरम अलौकिक की थाह थहिबौ करैं ;
असत असार या पसार मैं हमारी जान,
जन भरमाये सदा ऐसैं रहिबौ करैं ;
जागत औ पागत अनेक परिपंचनि मैं,
जैसे सपने मैं अपने कौ लहिबौ करैं ।

कृष्णोत्तर

हा ! हा ! इन्हैं रोकन कौ टोक न लगावौ तुम,
बिसद बिवेक - ज्ञान - गौरव - दुलारे ह्वै ;
प्रेम 'रतनाकर' कहत इमि ऊधव सौं,
थहरि करेजौ थामि परम दुखारे ह्वै ;
सीतल करत नैकु ही-तल हमारौ परि,
विषय-वियोग-ताप-समन पुचारे ह्वै ;
गोपिन कै नैन-नीर-ध्यान-नलिका ह्वै धाइ,
दृगनि हमारैं आइ छूटत फुहारे ह्वै ।

प्रेम-नेम-निफल-निवारि उर-अन्तर तैं,
ब्रह्म-ज्ञान आनँद-निधान भरि लैहैं हम ;
कहै 'रतनाकर' सुधाकर-मुखीनि-ध्यान,
आँसुनि सौं धोइ जोति जोइ जरि लैहैं हम ;
आवौ एक बार धारि गोकुल-गली की धूरि,
तब इहिं नीति की प्रतीति धरि लैहैं हम ;
मन सौं. करेजे सौं, स्रवन-सिर-आँखिन सौं,
ऊधव तिहारी सीख भीख करि लैहैं हम ।

बात चलैं जिनकी उड़ात धीर धूरि भयौ,
ऊधौ मन्त्र फूंकन चले हैं तिन्हैं ज्ञानी ह्वै;
कहै 'रत्नाकर' गुपाल कैं हिये मैं उठी,
हूक मूक भायनि की अकह कहानी ह्वै:
गहबर कंठ ह्वै न कढ़न संदेस पायौ,
नैन-मग तौलौं आनि बैन अगवानी ह्वै;
प्राकृत प्रभाव सौं पलट मनमानी पाइ,
पानी आज सकल संवार्‌यौ काज बानी ह्वै।

ऊधव कैं चलत गुपाल-उर माँहि चल,-
आतुरी मची सो परे कहि न कवीनि सौं;
कहै 'रत्नाकर' हियौ हूँ चलिबे कौं संग,
लाख अभिलाष लै उमहि बिकलीनि सौं:
आनि हिचकी ह्वै गरैं बीच सकस्यौई परै,
स्वेद ह्वै रस्यौई परै रोम-झँझरीनि सौं;
आनन-दुवार तैं उसाँस ह्वै बढ्यौई परै;
आँस ह्वै कढ्यौई परै नैन-खिरकीनि सौं।

(ऊधव-शतक से)

श्री रत्नाकर जी के ग्रन्थ

काव्य—हरिश्चन्द्र, हिंडोला, कल-काशी, गंगावतरण, ऊधव-शतक।
मुक्तक—शृंगार-लहरी, गंगाविष्णु-लहरी, रत्नाष्टक, वीराष्टकं, द्रौपदी क्रंदन, भीष्माष्टक, प्रकीर्ण पद्यावली।
सम्पादित—हम्मीरहट, हिततरंगिणी, कंठाभरण, बिहार-रत्नाकर, सूर-सागर (कुछ अंश)
रीति-ग्रन्थ—घनाक्षरी-नियम-रत्नाकर !
आपकी समस्त रचनाओं का संग्रह है—"रत्नाकर"

—:※:—

लाला भगवानदीन 'दीन'

'दीन' जी का जन्म जिला फतेहपुर के बरवट ग्राम में श्रावण शुक्ल ६, संवत् १६२३ वि० में हुआ था। इनके पूर्व-पुरुष रायबरेली में रहा करते थे। सन् ५७ के पश्चात् ये लोग जिला फतेहपुर में आ बसे। ११ वर्ष की अवस्था में 'दीन' जी की माता का देहान्त होगया। इनकी शिक्षा एफ० ए० के आगे न हो सकी। आप कुछ दिन तक कायस्थ पाठशाला के अध्यापक रह कर छतरपुर के महाराजा हाई स्कूल में नियुक्त हो गये। वहाँ इनकी पहली स्त्री का देहान्त हो गया। इनकी दूसरी स्त्री प्रसिद्ध कवियित्री बुन्देला-बाला थीं।

बाल्यकाल से ही हिन्दी-कविता की ओर लाला जी की प्रवृत्ति थी। उर्दू में भी आप 'रौशन' उपनाम से रचना किया करते थे।

छतरपुर से 'दीन' जी सेन्ट्रल-हिन्दू-कालेज काशी में फारसी के शिक्षक होकर आये। वहीं नागरी-प्रचारिणी-सभा के प्राचीन ग्रन्थों का सम्पादन भी करने लगे। इसी समय इन्होंने 'वीर-पंच-रत्न' नामक वीर-काव्य लिखा। 'हिन्दी-शब्द-सागर' के सम्पादक-मंडल में भी लाला जी ने काम
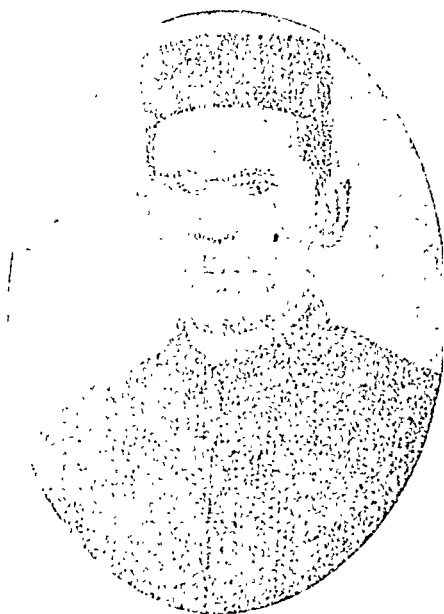
किया। तदनन्तर हिन्दी-विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्यापक हुए। साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं के लिए इन्होंने 'हिन्दी-साहित्य-विद्यालय' की स्थापना की, जो अब तक अपना कार्य कर रहा है। कुछ दिनों तक आपने गया की 'लक्ष्मी' नामक पत्रिका का सम्पादन भी किया।

लाला जी समस्या पूर्ति कला में बड़े निपुण थे और अलंकार आदि के अच्छे मर्म्मज्ञ। कहना चाहिए कि आप लेखक, समालोचक, सम्पादक अध्यापक, व्याख्याता और कवि होकर अच्छे साहित्यसेवी थे।

लाला जी व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में सुन्दर कविता करते थे। हाँ व्रजभाषा के आप पूर्ण पक्षपाती थे। आपकी भाषा सरल, सबल और भावपूर्ण रहती है। शैली प्रायः अलंकृत तथा कला-पूर्ण है। चातुर्य और चमत्कार आपको प्रिय था।

लाला जी सरल प्रकृति के स्पष्टवादी, भावुक और गुण-ग्राही थे। साहित्यानुराग आप में ख़ूब था, प्रमोद-प्रिय और अध्यवसायी भी थे। आपके कोई सन्तान नहीं है। लाला जी का देहावसान श्रावण शुक्ल ३, संवत् १६८७ वि० को काशी में हुआ।

मेघ-स्वागत

स्वागत! हे रस-रासि रसिक-मन मोद उभारन,
स्वागत! सघन पयोद चंड-कर-ताप निवारन;
स्वागत! सुधा-समूह जगत-जन-दीनन-दाता,
स्वागत! धाराधरन धराधर अहंमति-हाता;
हे अम्बरचारी सरस-वर, पिय-दरसन, सन्ताप-हर,
जन 'दीन'-हीन चातक सरिस, स्वागत करत पसारि कर!
वे चतुरानन चतुर वेद-धुनि हरिहिं सुनावत,
तुम करि धुनि गम्भीर सरस चौमुख बरसावत;
वे निज कला पसारि जगत-जीवन उपजावत,
तुमहूँ जीवन-दानि बने निज विभव दिखावत;

वे अज कहाय, कमलज बने कमलन के सुहृद अति,
हे रस-निधि ! हे घनस्याम ! तुम, प्रजापतिहु के प्रजापति।

पवन-तनय हनुमान राम की आयसु पाई,
सीता-खोजन-काज सकति आपनि दरसाई;
तेरे जनक गँभीर सिन्धु की लाँघी सीमा,
तब ते विषधर-सरिस तुमहुँ करि क्रोध असीमा।

सोइ बैर चुकावन हेत तुम, पवन सीस नित पद धरत,
हे घन वर ! तुम हनुमान ते कछुक सबल ही लखि परत।

वे सूक्षम ते थूल, थूल ते लघु ह्वै जाते,
तुम सूक्षम ते अमित रंग आकृति धरि भाते;
वे व्यापक सर्वत्र, तुमहुँ सर्वत्र बिहारी,
वे निरमल रस एक, तुमहुँ निरमल अविकारी;

जन ज्ञानी उनको लखत हैं, तुम विज्ञानिन-मन हरत,
हे घन ! तुम निरगुन ब्रह्म ते, कछुक प्रबल ही लखि परत।

वे पीताम्बर-धरन, तुमहुँ नित चपला धारी,
वे पहिरत बन-माल, इन्द्र-धनु तव छविकारी;
वे सिर धारत पंख, मोर तुम पर बलिहारी,
वे गोपिन सुखदानि, तुमहुँ गो-कुल-सुखकारी;

वे स्यामा को सुमनस हरत, तुम स्यामा सी छबि करत,
हे घनवर ! तुम श्री कृष्ण ते, कछुक प्रबल ही लखि परत।

वे रवि कुल-संजात तुमहुँ वर रवि-कर-जातक,
वे निसिचर-दल-दमन, तुमहुँ निसिचर-पति-हातक;
वे धनुधर प्रख्यात, तुमहुँ सुमनस-धनुधारी,
उनकी सुछबि अथोर, सरिस तन आभ तिहारी;

वे सदल बाँधि अम्बुधि तरे, तुम बिन स्रम सागर तरत,
हे घन-वर ! तुम श्रीराम ते, कछुक प्रबल ही लखि परत।

स्वागत ! हे प्रिय मेघ ! भले आये तुम भाई,
हरषे मेढक, मीन, मोर, मानव मुद पाई;
चातक-बोलनि-व्याज धरा यह देत बधाई,
गोकुल स्वागत करत सूंघि निज सीस उठाई;
निज मुकुट फेंकि नग-राज ये, कर पल्लवन डोलाय द्रुम,
सब स्वागत करत पयोद ! तब. आओ-आओ मित्र ! तुम !

रामगिर्याश्रम

राम-सैल-सोभा अति सुन्दर बरनि सकै कवि को है,
जाके रूप अनूप बिलोकत सुर-नर को मन मोहै,
राम-लखन-सीता-पद अंकित किधौं भूमि तल सोहै,
किधौं त्रिपुंड-सहित अति सोभित भाल विन्ध्य-गिर को है ?

सीतल सुरभित-मन्द पवन नित बहुत हुलास उभारे,
प्रानायाम बायु कै बिन्ध्या-दरी नासिकन झारे,
झर-झर-झर-झरनन-रव गूंजत खग-मृग अटत हुंकारें,
किधौं बिन्ध्य-जोगीश ध्यान-रत प्रनव मन्त्र उच्चारैं ?

ऋषि मुनि कृत कल साम-गान यह किधौं प्रमोद पसारे,
ध्यान-मगन जोगीस बिन्ध्य धौं सोहम सब्द उचारै ?
सुकृती जन कृत होम-धूम की किधौं सुगन्धि घटा है,
किधौं विन्ध्यगिरिजोगि-राज की अनुपम जटिल जटा है ?

सोहत सुभ्र तुंग सिखरन पैं बन विचित्र छवि-धारी,
किधौं विन्ध्य दरसन-हित आये सुरचढ़िविविध सवारी ?
संकुल-लता विटप छाये घन, रवि-कर निकर न पैठे,
किधौं विन्ध्य लोहँड़ा औंधाये मुनि लोमस बनि बैठे ?

सुन्दर सीतल सुच्छ समाकृति फटिक-सिला मन मोहैं,
किधौं विन्ध्य मुनिवर के अनुभव सुच्छ सुदृढ़ पै सोहैं;
विमल जलासय-निकटजीव सब निज-निज ताप बुझावैं,
किधौंविन्ध्यगिरि सिद्धराज तें सब निज रुचि रस पावैं ?

सरद समय दिन रैन जलासय कमल-कुमुद युत सोहैं,
मनो सान्त-रस-पूर्न भगत-मन रहत सदा विकसोहैं;
सुथिर-विमलसरन महँ परि निसिनभनरु-गनप्रतिछाया,
ज्यों हरिजन के विमल हृदय महँ वपु-विराट दरसाया ?

हिम-ऋतु पाय तुंग सिखरन पै. धवल हिम-छटा छावै,
मानो नभ विन्ध्यहिं तपसी गुनि कम्बल धवल ओढ़ावैं;
अथवा प्रबल देखि कलि-कालहिं निज मन भीति बढ़ावैं ?
राम-चरन-आस्रम-हित गिरि पै बढ़ुरि सतोगुन आवै ?

सिसिर काल महँ तृन-तरु-बृनती, निज-निज पत्र गिरावैं,
जैसे जन नव वसन धरन-हित, जीरन बसन बहावैं;
रूखी वायु बहै निसि-वासर, तजैं रूख चिकनाई,
त्यों तपसिन के हित नितबाढ़ै जग ते अमित रुखाई ?

ऋतु बसन्त तृन तरु वल्लरि सब नव दल-फूलन छावैं,
ज्यों सुकृती जन राम-कृपा ते सुख सम्पति जस पावैं;
अरुन-सुचिक्कन-कोमल दल जुत बिटप बल्लरी सोहैं,
दिनकर-करन परसि चिलकैं अति जग-जन दीठिनि मोहैं ?

कूजत पिक, गुंजति अलि-माला कलरव जन-मन मोहैं,
ज्यों उदार जन-द्वार सदा ही जय-जय धुनि जुत सोहैं;
बन-बासी खग-मृग उमंग जुत दम्पति भाव जनावैं,
जननी-जनक होन की इच्छा सब मन बसी बतावैं !

ऋतु निदाघ सूखे तृन संकुल निर्झर-जल पतराहीं,
ज्यों हरि-हित तप करत विषय-रस-स्रोत सकल सकुचाहीं;
आँवाँ-सम गिरि, सिला तवा-सम, फिरैं बवूर उड़ानें,
ज्यों हरि-विमुख जीव सन्तापित कबहुँ न सुथरि थिरानें;

आक-पलास चंडकर-तापित, उमगि उमँगि उलहाते;
ज्यों प्रेमी प्रीतम-कर-ताड़ित हृदय अधिक सरसाते!
कोचक प्रथम सुनाय मधुर सुर बहुरि दवारि लगावै;
दीपक राग गानकारिन कहँ मानहुँ सीख सिखावैं;

बरसा पाय जाव-तृन संकुल गिरि निज सिर पै धारे,
मनहुँ प्रजापति प्रजा-समूहनि निज अंकनि बैठारे!
विविध धातु-रंजित बरसा-जल इत उत बहै अपारा,
हरि-रस पाय निकारैं जन जिमि राग-द्वेष की धारा,

सुर-धनु-सहित श्यामघन परसत, तुंग सिखर यों सोहै,
नन्दलाल को सुगम भाल ज्यों सुमुकुट लखि मन मोहै;
गिरि अंचल को सब जल बहि-बहि जुरत सरोवर माहीं,
जैसे सकल सुकृत-फल आपुहि आवत हरि-जन पाहीं;

लहि बरसा-जल ठूँठ-ठूँठ तरु अंकुर नवल निकारैं,
ज्यों हरि-कृपा मुदित जन 'दीन' हु पुनि सम्पति-सुख धारैं;
कबहुँ अमोलक धातु-रतन कहुँ, भीलन कहँ मिलि जाहीं;
जैसे साँचे राम-दास कहँ अनायास दरसाहीं;

षट ऋतु गति-दिवस जेहि अवसर जहाँ दीठि है जावै,
तहँ मनोरंजक सामग्री विविधि भाँति की पावै;
सब सुखमय साकेत त्याग कै रहे राम जहँ आई,
तेहि गिरि, तेहि आश्रम की महिमा कहै 'दीन' किमि गाई।

कोकिल-कृष्ण

दोऊ पखी, जग, पूँछ दुहुन की, दोऊ कबौं-कबौं देत दिखाई
रागी दोऊ, अनुरागी दोऊ-दोऊ अंड रचैं पर रहैं अरगाई
बौरे रसालन चाहैं कोऊ, कवि-जूथ दुहून की कीरति गाई
'दीन' भनै, करि ध्यान विलोकहु, कोकिल, कृष्ण में भेद न भाई

जीवन-संग्राम

स्वारथ के रथ घहरात हैं घनेरे जहाँ,
चंचल चलाक चित्त घोरे सहगाम हैं;
मार-मद-मोह हैं मतंग मतवारे डटे,
पांढ़े पात-पुंज की पदाती वल-धाम हैं;
धोखे, दगाबाजी, छल, कपट के तेगे चलैं,
वरछी विपत्तिन की चलैं अविराम हैं;
'दीन कवि' रातों-दिन होत ही रहत देखौ,
विकट महान जग जीवन-संग्राम हैं।

मिलन को आवैं धाय रसवती वहु,
उठतीं तरंगैं मकरध्वज को ग्राम हैं;
अमृत-कलस कहुँ, अनल अपार कहुँ,
हय-गय-रतन की छटा अभिराम हैं।
गायन को सब्द कहुँ, रुदन को सोर अति,
कोऊ झप मारैं, कोऊ करैं विराम हैं;
ससुर को धाम अभिराम कैधों पारावार,
कैधों जग-जीवन, कै विकट संग्राम हैं ?

ताजमहल

कैधौं वासुकी को अंड खंड ह्वै पर्‌यो है आय,
चारिहू मीनार सो सँपोलन-समाज है;
चारि भुजा धारिकै विराजौं किधौं भूत-नाथ,
जमुना निकट वहै सोई नागराज है;
दीन कवि कैधौं चारि दन्त-जुत देखियत,
व्रज-तट इन्द्र-गाज-मस्तक दराज है;
जग के समस्त सौंध-सन्धन को सिर-ताज,
भारत में राजि रह्यो आगरे को ताज है।

(नवीन-बीन से)

लाला भगवान दीन के ग्रन्थ

काव्य-ग्रन्थ—वीर-पंचरत्न, नवीन बीन, दीन।

टीका—केशव-कौमुदी, प्रिया-प्रकाश, विहारी बोधिनी, सूक्ति-सरोवर।

संकलन—सूर-पंचरत्न, केशव पंचरत्न।

रीति-ग्रन्थ—अलंकार-मंजूषा, व्यंगार्थ मंजूषा।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

'पूर्ण' जी का जन्म संवत् १९२५ में कानपुर में हुआ। शिक्षा-काल समाप्त कर इन्होंने जन्म-स्थान कानपुर में ही वकालत करना प्रारम्भ किया। इनका समय अपने इसी एक काम में न लग कर विभिन्न साहित्यिक, सामाजिक और धार्मिक कार्यों में भी व्यतीत होता था। इन्हीं के उत्साह का यह फल था कि कानपुर में काव्य साहित्य की अच्छी चर्चा होने लगी। 'पूर्ण जी' ने ही मरण प्राय 'रसिक समाज' को बचा कर उसे फिर से जीवन-दान दिया। इस के अतिरिक्त इनके सतत परिश्रम फल-स्वरूप से इन्हें और भी कई प्रकार की सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं को अस्तित्व में लाने का श्रेय प्राप्त हुआ।
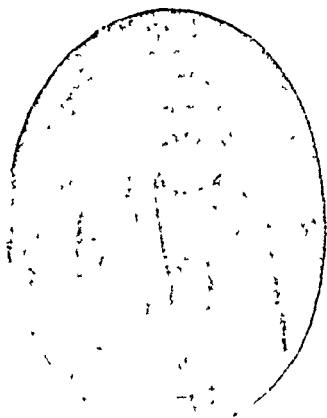
'पूर्ण जी' ने नवीन और प्राचीन दोनों प्रकार की कविताएँ की हैं। हाँ, विषय की दृष्टि से दोनों में साम्य है। ये शृंगार के विशेष प्रेमी तो न थे; फिर भी शृंगार-विषयक इनकी थोड़ी सी रचनाएँ मिलती हैं उनमें भावुकता और सरसता का सुन्दर सम्मिश्रण पाया जाता है। इनकी कविता के मुख्य विषय, भक्ति, वेदान्त, ऋतु-वर्णन आदि हैं। इसके अतिरिक्त स्वदेशी आन्दोलन, मातृ-भाषा आदि पर भी इन्होंने रुचिर रचनाएँ की हैं।

भक्ति-सम्बन्धिनी कविताओं में इनके हृदय का स्वाभाविक भावोद्रेक मार्मिक मंजुल के साथ प्रकट हुआ है प्रकृति-चित्रण इनकी लेखनी द्वारा सजीव और साकार हो सका है। इससे इनका प्रगाढ़ प्रकृति-प्रेम प्रकट होता है। अपनी ऋतु-वर्णन वाली कविताओं में इन्होंने भावुक सहृदयता के साथ प्रथम तो ऋतुओं की छटा का आनन्दानुभव भी किया और कराया है और फिर काव्योचित ढंग से उस आनन्दानुभूति का वर्णन भी कर दिया है। प्रकृति-वर्णन की पश्चिमी प्रणाली से भी ये खूब परिचित मालूम होते हैं।

राय देवीप्रसाद की भाषा सरल, सरस, मुहावरेदार, लोकोक्तियों से पूर्ण और व्याकरण-सम्मत होती थी। व्यर्थ का अलंकार-प्रयोग इन्हें अप्रिय था। निरीक्षण-प्रधान कवि होने के कारण इनके काव्य में कहीं-कहीं बिल्कुल नयी उपमाओं का भी प्रयोग मिलता है। यह हिन्दी साहित्य सम्मेलन के गोरखपुर वाले अधिवेशन के सभापति भी मनोनीत हुए थे। पूर्ण जी का निधन संवत् १९७२ में हुआ।

सरस्वती-वन्दना

कुन्द घनसार चन्द हू तें अंग सोभावन्त,
भूखन अमन्द त्यों विदूखत हैं दामिनी ;
कंज-मुखी कंज नैनी, बीन कर-कंज धारे,
सोहै कंज-आसन, सुरी हैं अनुगामिनी ;
भाव-रस-छन्दन की, कविता निबन्धन की,
'पूरन' प्रसिद्ध सिद्ध सिद्धन की स्वामिनी ;
जै-जै मातु बानी विस्व-रानी बरदानी देवि,
आनँद-प्रदानी कमलासन की भामिनी !

कुन्द-कुल-चाँदनी में, 'पूरन' कुमोदिनी में,
सेत बारि-जात-पारिजात की निकाई में,
गंगा की लहर में, छहर माँहि छीरधि की,
चन्द तापहर में, सुधा सुघराई में,
चित्त की विमलता में, कला में, कुसलता में,
सत्य की धवलता में, काव्य की लुनाई में;
भासमान बानी ग्यान-ध्यान के समागम में,
गूढ़ निगमागम-पुरान-समुदाई में।

हरि-जस-पावस में, कहरै सिखी-सी तु ही,
वेद-कुसुमाकर में कूजती पिकी-सी है;
तू ही सुखदानी रस-धर्म की कहानी माँहिं,
कर्न-वीथिका में बानी दीपिका-सी दीसी है;
नीति-छीर-धारा में उदारा नवनीत तू ही,
मेधा-मेघमाला में बसति दामिनी-सी है;
ग्यानिन की प्रतिभा, सुमति कवि-नाथन की,
गायन की सिद्धि तेरे हाथन विकी-सी है।

सनक, सनन्दन, जनक, व्यास-नन्दन से,
रहत सदा से सदा सुखमा-सराहन के;
अगा-अविनासी विस्नु रहैं अभिलासी बने,
भारती को महिमा-समुद्र अवगाहन के;
'पूरन' प्रकास ही की मूरति-सी भासमान,
नेमी है दिनेस से चरन चारु चाहन के,
मोदप्रद सुखद बिसद जोई 'हंसपद',
सेवै पद-कंज सो बहाने हंस-वाहन के।

'पूरन' समूह सुर-सन्तन-प्रतापिन को,
तेरे पद-पंकज के प्रेम में पगो करै ;
पाय भरपूर ग्यान, त्यागि भय, भाग-भरो,
भारती-भवन्ती भक्त भव तें भगो करै ;
लगन लगाय नीके अपने सरूप माहिं,
दिन-दिन माया तें विरागी विलगो करै,
तेरी ही कृपा सो जग जागरूक प्रतिभा की,
जगमग जोति उर जोगी के जगो करै।

वसन्त-ऋतु

सुमन रँगीले चटकीले छिति छहरत,
सघन लतान की ललित सोभा न्यारी है ;
गुंजत मलिन्द-पुंज मंजु कुंज-कानन में,
सीतल-सुगन्ध-मन्द डोलत बयारी है ;
गावत सरस बोल गोल बह पंछिन के,
'पूरन' विलोकि छवि उपमा विचारी है ;
ईस भगवन्त को विरद वर गायन को,
सन्त श्री बसन्त गान-मंडली सँवारी है।

ग्रीष्म-ऋतु

सेस फुफकार की बतावत है भार कोऊ,
कोऊ कला भाखत है प्रलय कृसानु की ;
रुद्र-रस-वैन कोऊ, संकर को तीजो नैन,
उघरो बतावै कोऊ, ताप अघवानु की,
ग्रीषम की भीषम तपन देखी 'पूरन' जू,
मन में विचारि यह बात अनुमानु की ;
आवा-सी अवनि है, पजावा-सी पवन लेति,
दावा सी लिखाए बाजदावा धूप भानु की।

तोरे देत तुंग तरु, भार-वन भोरे देत,
फोरे देत कान धुनि, आँधिन महान की;
तापे देत थल को, जलासय जराये देत,
जग हहराये देत, लूक वे प्रमान की;
घूमि भ्रमवात, भूत-दूत-से चहूँघा भूमि,
फेरत दुहाई-सी, निदाघ दुखदान की;
ग्रीषम की अन्धाधुन्ध भीषम कही ना जात,
धूरि भोंक कीन्हीं मन्द आभा चन्द-भान की।

दावा के अहारी! अघासुर के प्रहारी,
जिन झेली विस-भार काली-फनन महान की;
ग्रीषम सुखद चाँदनी में व्रजचन्द सोई,
काहे जू तपत सुधि त्यागे खान-पान की;
ललिता कहत हँसि बैन वर विंग वारे,
'पूरन' विलोकि गति आतुर सुजान की;
प्यारे तन लागी धूप जेठो-वृखभान कीधौं,
कोपी रावरे पै आजु बेटी वृषभान की?

वर्षा-ऋतु

चातक-समूह बैठे बोलन को बाए मुख,
नाचन को मोर ठाढ़े पाँव ही उठाए हैं;
'पूरन' जी पावस को आगम सुखद जानि,
आनँद सों बेलिन के हिये लहराए हैं;
डोलौ द्रुम-जानि केरे! अरक-जवास एरे!
तेरे जरिबे के अब दोस नियराए हैं;
ही-तल-मही-तल को सीतल करनहार,
देखु कैसे प्यारे घन कारे घिरि आए हैं।

गाजैं मेघ कारे, मोर कूकैं मतवारे, रटैं
पपी-वृन्द न्यारे, जोर मारुत जनावती ;
इन्द्र-चाप भ्राजे, वक-अवली विराजे छटा,
दामिनि की छाजे, भूमि हरित सुहावती ;
'पूरन' सिंगार साजि सुन्दरी-समाज आज,
झूलती मनोहर मराल मंजु गावती ;
चन्द विनु पावस में जानि कै सुधा की हानि,
मानो चन्द-मंडली पियूष बरसावती ।

झूमि-झूमि लोनी-लोनी लतिका लवंगनि की,
भेंटती तरुन सों पवन मिस पाय-पाय ;
कामिनी-सी दामिनी लगाए निज अंक तैसे,
साँवरे बलाहक रहे हैं नभ छाय-छाय ;
घनस्याम प्यारी वृथा कीन्हों मान पावस में,
सुनु तो पपीहा की रटनि उर लाय लाय ;
पीतम-मिलन अभिलासी वनिता-सी लखौ,
सरिता सिधारी ओर सागर के धाय-धाय ।

भाँति-भाँति फूलन पै भूलन भ्रमर लगे,
कालिंदी के कूलन पै कुंजन अपारन में;
इन्द्र की वधूटिन के वृन्द दरसान लागे,
मोर सरसान लागे मोरनी पुकारन में;
दामिनि-छटा सों, घटा गाजन अछोर लागी,
राजनि हिलोर लागी सरिता की धारन में;
फूले बन, फूले मन आनँद भरन लागे,
झूले लागे परन कदम्बर की डारन में।

आई बरसात की रसीली सुखदाई ऋतु,
छिति पै चहूँघा सरसाति सुघराई है;
साजे बर-बसन-अभूषन सकल अंग,
झूलत हिंडोरे तरुनीन-समुदाई है;
पैंग के भरत बिछुवान की मधुर धुनि,
सुनि-सुनि 'पूरन' यों उपमा सुनाई है;
हंसनु की अवली भुलाय के पुरानी चाल,
आज ऋतु पावस को दै रही बधाई है।

कीधौं मारतंड की प्रचंडता-समन हेतु,
देवी धरनी ने बान सीतल पँवारे हैं;
कीधौं निज सम्पति को चोर सविता को जानि,
करत बरुन ओर वाही के इसारे हैं;
कीधौं सियराइबे को 'पूरन' समीरन को,
प्रकृति कपूर-कन सघन उछारे हैं;
कीधौं घोर ग्रीषम में तापित मही-तल पै,
ही-तल जुड़ावन को सीतल फुहारे हैं?

चाँदनी चमेली चारु सावनी रसालन में,
बकुल-लवंगन-कदम्बन सघन में;
'पूरन' सरस ऋतु पावस के आवत ही,
भई है बहाली हरियाली बाग-बन में;
पादप वे रहे जौ लौं आतप से झूरे रहे,
उनहिं निहारी भारी रावरे तनन के:
अरक-जवास! आप जग में उदास ऐसे,
सरसन फैले बरसात के दिनन में!

पावस की पाय कै रसीली सुखदाई ऋतु,
भूलि दुख सगरे सँजोग-सुख पावत हैं;
अंक में लगाय चंचला को घन भागसाली,
'पूरन' छिनै ही घन आनन्द मनावत हैं;
हलके हृदयवारे कारे मुख लीन्हें वृथा,
हठ कै वियोगिन की विथा को वढ़ावत हैं;
वार-वार छनदा दिखाय गोहराय मोहिं,
धुरवा घमंडी हाय! जियरा जरावत हैं।

जल-भरी झारी कारी वादरी विराजै व्योम,
गरजन मन्द मन्त्र-मंडल उचारे हैं;
छहरति दामिनि सो भाजन घुमावन में,
दमकत भूपन अमन्द द्युतिवारे हैं।
परत फुहार जल पावन झरत सोही,
पेखि कवि 'पूरन' विचार उर धारे हैं;
प्यारी सुकुमारी की वलाय वरकावन को,
देखौ देव-नारी आज आरती उतारे हैं।

चाल पै मराल-गन, कर पै मृनाल-कंज,
भृंग-जाल वारन पै, मन को लुभायो है;
नैनन पै खंज-वृन्द, रीझो चन्द आनन पै,
तप को निधान सव ही के मन भायो है;
एक पग ठाढ़े कोऊ, वूड़त, भ्रमत कोऊ,
भसम रमावै कोऊ फेरा देत धायो है;
राधे हरि-प्यारी तेरे रूप के उपासकन,
जग को सरद में तपोवन वनायो है।

अरक-जवास ऐसे विकसे कुमुद-कंज,
सेत घन व्योम धूरि धुन्ध ऐसी छै रही;
ही-तल दहनहारी सीतल पावन आली,
जेठ की जलाक-सी तपन तन दै रही;
चाँदनी अखंड लागै आतप प्रचंड ऐसी,
किरन सुधाकर की हलाहल वै रही,
विन व्रज-चन्द सुखकन्द मोंहिं 'पूरन' जू,
भीषम सरद बरै ग्रीषम-सी ह्वै रही।

सरद-निसा में व्योम लखि के मयंक विन,
'पूरन' हिए में इमि कारन विचारे हैं,
बिरह-जराई अवलान को दहत चन्द,
ताते आज तापै विधि कोपे दयावारे हैं;
निसि-पति पातकी को तम की चटान-बीच,
पटकि-पछारि अंग निपट विदारे हैं;
तातें भयो चूर-चूर, उचटे अनन्त कन,
छिटिके सघन सो गगन मध्य तारे हैं।

सेत रंगवारे घन सोहत भसम अंग,
भाल वर-भूखन ससी की छटा छाई है,
देव-धुनि धार है अपार सोभा हंसन की,
कंज-वन गौरीजू की सोही सुघराई है;
कासन को पुंज मंजु राजत बृषभराज,
भृंगन की अवली भुजंगन-सी भाई है;
देखु सिव-भक्तन के हिये हुलसावन को,
सुखमा सरद की महेस वनि आई है।

चन्दमुखी भामिनि प्रकृति कार जामिनि में,
पूरन पुरुष संग मिलन सिधारी है;
सरस समीर स्वास सोहत सुवास मन्द,
चाँदनी चटक चारु रूप उजियारी है;
चिहुँक चकोरन की नूपुर बजत मंजु,
सेत घन-अंग अंगराग दुति प्यारी है;
तारागन वलित ललित चारु अम्बर की,
सारी स्याम बूटेदार सुन्दर सँवारी है।

औरै भाँति आज नीर-जमुना किलोलत है,
औरै भांति डोलत समीर सुखदाई है;
औरै भाँति भायो कदम्बन भ्रमर-भार,
धुरवान हू मुखान औरै धुनि छाई है;
स्याम के जनम-दिन भीर गोप-गोपिन की,
औरै भाँति नन्द-भौन जात भूरि धाई है;
औरै भाँति 'पूरन' रसाल गान छाजत है,
औरै साज संग आज बजत बधाई है।

सौन्दर्य-शृंगार

नाइन बुलाय अंग-अंग उबटाय-न्हाय,
जावक दिवाय पग मेंहदी रचाई है;
कज्जल कलित करि लोचन अनोखे चोखे,
चन्दन की बिन्दी बाल-भाल पै लगाई है;
चारु मखतूल-ताग रुचि सों गुँधाय बेनी,
सुघर अनूप माँग मोतिन भराई है;
तारन की बाँधि कै कतार नीके तारापति,
मानहु नवीन कीन्हीं तम पै चढ़ाई है॥

उत बाहन हैं इत नैन मृगा, उत चाँदनी ह्याँ तन तेज अनी,
उत कोस सुधा को सराहौं इतै, बतरान है मंजु पियूष सनी;
उत 'पूरन' षोडस पेखी कला, इत सोरा सिंगार की सोभ बनी;
वृषभानु की नन्दिनि नागरि की, अरु चन्द की होड़ ठनी सो ठनी।

इत मोर-पखा उत मोर नचैं, सुर-चाप इतै उत है कछनी,
बक-पाँति उतै इत मोती-हरा, उत गाजन ह्याँ धुनि वेनु बनी;
चपला है उतै इत पीतपटी, तन ह्याँ उत स्याम घटा है घनी,
रस 'पूरन' या ऋतु में सजनी, हरि-पावस होड़ ठनी-सो-ठनी।

गज-बल-धाम जे सघन घनस्याम छाए,
हय बल धावत प्रचंड जो बयारी है;
तुंग तरु रथ हैं, बलाक-दल पैदल हैं,
घोर धुनि दुन्दुभी बजत जोर न्यारी है;
बूँद की कटारी सुर-चाप असि चंचला है,
करखा पपीहा-पिक-मोर-सोर भारी है;
मान, गढ़ तोरिबे को आली मिस पावस के,
मैन नृप सैन चतुरंगिनी सँवारी है।

मन खैंचत तार के खैंचत ही, उमहै जब "जोड़" बजावन में;
उमगैं मधुरे सुर की लहरी, गहरी "गमकैं" दरसावन में।
चपलाई हरै थिरता चित की, अँगुरी "मिजराब" चलावन में;
मनभावन गावन के मिस बाल, प्रवीन है चित्त चुरावन में।

उर प्रेम की जोति जगाय रही, मति को विनु यास घुमाय रही;
रस की बरसात लगाय रही, हिय पाहन से पिघलाय रही;
हरियारे बनाय के रूखे हिये, उतसाह की पैंगै झुलाय रही;
इक राग अलापि कै भाव-भरो, खटराग-प्रभाव दिखाय रही।

ब्रह्म-विज्ञान

जाही दिन-राज के प्रकास में लख्यौ है सब,
ताही को लख्यो न अचरज यों महान है ;
बोलत-बतात दिन-रात तौ हूँ पूँछत हौ ?
सचमुच मुख में हमारे का जुबान है,
खोजन हौं जाको घर-बाहर, अखंड सो तो,
आतमौ तिहारे घर ही में राजमान है ;
सच्चित स्वरूपवारो 'पूरन' परम प्यारो,
सोई है जहान माहिं, ताहि में जहान है।

चाँदनी को धाम जान्यो, सूधो ताहि नाम जान्यो,
जान्यो दुःख-धाम, जौन सुख को निधान है,
जूड़े को तपायो मान्यो, सुखी को सतायो जान्यो,
अपनो परायो मान्यो, ह्वै रह्यो अजान है ;
ले कर सहारो सतसंग स्रुति-सीखवारो,
ब्रह्म रूपी रस्सी को न लीन्यो पहचान है ;
ताहि ते दृगन तेरे भय को करनहारो,
बगरो भुजंग ऐसो सगरो जहान है।

सुख-दुख-भोगी कैसे आतमा प्रतीत होत,
जदपि न काहू भाँति व्यापै ताहि माया है ;
जैसे जल-भाजन में नभ-प्रतिबिम्ब, यहाँ
जीव-प्रतिबिम्ब नभ आतमा अमाया है ;
बासना-पवन जल-बुद्धि को डुलावै देखो,
भेद खुल जावे जु पै संकर की दाया है ;
'पूरन' वा नभ में न किंचित बिकार होत,
जदपि दिखाई देत डावाँडोल काया है।

प्रीति मणि-माल की, न भीति है भुजंगम की,
सत्रु पर क्रोध है, न मित्र पर दाया है;
मित्रता सुधा सों है, न वैर है हलाहल सों,
पदवी प्रजा की तैसो भूपति को पाया है;
कानन में वास तैसे, कलित मकानन में;
अम्बर-बलित सो दिगम्बर की काया है;
'पूरन' अनन्द माहिं लीन-ग्यान योगिन को,
गरमी की धूप तैसी सरदी की छाया है।

कोऊ पाट ही के नीके अम्बर जरी के सजे,
कोऊ दुख-मगन नगन दीन-काया है;
कोऊ स्वाद-पूरे खात व्यंजन सुधा-सों रूरे,
काहू पै बिधाता की न साग हू की दाया है;
कहूँ सोक छायो, कहूँ आनँद को पायो रंग,
कोऊ अति छुद्र, कोऊ आसमान-पाया है;
'पूरन' बिचित्र हैं चरित्र भूमि-मंडल के,
रामजी की माया कहूँ धूप कहूँ छाया है।

कंचन को कंकन ज्यों पृथक न कंचन सों,
तैसे दयावान सों न भिन्न होत दाया है;
पवन को वेग जैसे भिन्न है पवन सों न,
जैसे पंचभूतन सों बिलग न काया है;
यही भाँति 'पूरन' जू जद्यपि कहत लोग,
व्यापक जगत माँहिं ब्रह्म संग माया है;
सर को विचारै, माया ब्रह्म सों बिलग नाहीं,
होत ज्यों पुरुष सों बिलग नाहिं छाया है।

वानी वेद जंगम अनन्त जो बखानी निते,
हिते लिखी ब्रह्म महात्तम को प्रकास है;
उत्तर औ दक्खिन औ पूरब औ पच्छिम हूँ,
ऊपर औ नीचे छोर नाहीं कहुँ भास है;
सर्व सत्तिमान करुना की भगवान ईस,
महिमा बखानन को कौन सों सुपास है;
'पूरन' मयंक-रवि-तारे अंक आखर हैं,
रावरो विरद-पत्र बापुरो अकास है।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' के ग्रन्थ

काव्य—पूर्ण-संग्रह (पूर्ण की समस्त रचनाओं का)

नाटक—चन्द्र-कला-भानु-कुमार ।

पंडित सत्यनारायण 'कवि-रत्न'

'व्रजकोकिल' सत्यनारायण 'कविरत्न' की असामयिक मृत्यु पर हिन्दी-भाषा-भाषी संसार एक बार क्षुब्ध हो उठा था। जन्म के क्षण से लेकर मरण पर्यन्त हमारे इस प्रतिभाशाली कवि-रत्न का जीवन करुणाजनक ही बना रहा। यही कारण है कि आज भी इनकी स्मृति हमारी आँखों में आँसू ला देती है।

सत्यनारायण जी का जन्म अलीगढ़ जिले के सराँय नामक गाँव में संवत् १६४१ में हुआ। बाबा रघुबरदासजी ने इन्हें हिन्दी की प्रारम्भिक शिक्षा दी और धाँधूपुर चले जाने के पश्चात् आगरे में इन्हें अँगरेज़ी की शिक्षा मिली। इन्हें कई वर्षों तक व्रज-भूमि में निवास करने का सुपास मिला इसलिए ये व्रजचन्द्र श्रीकृष्ण के अनन्य प्रेमी हो गये। उनके प्रति अपनी भक्ति भी इन्होंने व्रज की व्रजभाषा में ही व्यक्त की है। इन की भाषा में ठेठ असाहित्यिक व्रज-बोली के रूप भी मिलते हैं जो अन्य प्रान्त वालों के लिए दुर्बोध से पड़ते हैं।

'कविरत्न' जी के कविता पाठ का ढंग अत्यन्त सरस और मर्मस्पर्शी था। अपनी मनोमोहक पठन-शैली के द्वारा इन्होंने स्वामी रामतीर्थ और कवीन्द्र रवीन्द्र को भी मुग्ध कर दिया था। इनकी कविता में करुणा की पुट प्रायः ऐसी अच्छी रहती थी कि श्रोताओं पर उसका प्रभाव बिना पड़े न रहता था। पारिवारिक जीवन की परिस्थितियों ने इनकी कविता को एक विशेष दिशा में मोड़ दिया था जिसमें दुख, अशान्ति और निराशा की छाप बहुत गहरी पड़ी हुई है।

सत्यनारायण जी ने संस्कृत के कविवर भवभूति के दो नाटकों 'उत्तर रामचरित' और 'मालती माधव' के सुन्दर अनुवाद किये। इनके अतिरिक्त इन्होंने अँगरेज़ी के भी एक ग्रन्थ का 'देशभक्त होरेशस' के नाम से अनुवाद किया। इनकी स्फुट मौलिक कविताओं का संग्रह 'हृदय-तरंग' के नाम से छपा है। इसी में इनका 'भ्रमर-दूत' नामक काव्य भी है।

सरसता, सहृदयता और अकृत्रिमता के लिए 'कविरत्न' जी का स्मरण इधर के व्रज-भाषा-साहित्य में विशेष होता है। इनके स्वभाव की सरल ग्रामीणता को लेकर जो अनेक घटनाएँ साहित्यिक-समारोह के अवसरों पर घटित हुईं, वे इन्हें हमारे हृदय के और भी निकट ला देती हैं। इनकी भाषा मंजु, मृदुल और प्रसाद गुणमयी है। माधुर्य तो व्रज-भाषा की अपनी वस्तु है ही। इन्होंने व्रज-भाषा-काव्य में समयोचित नव भावों का भी अच्छा समावेश किया है।

आपका देहावसान संवत् १९७५ में हुआ।

मातृ-भू-बन्दना

जयति जयति जननी—

अमल-कमल-दल-वासिनि, वैभव-विपुल-विलासिनि,
नित नव-कला-निकासिनि, मुद मंगल-करनी,
भुवन-विदित गुन-रासिनि, सु-मधुर मंजुल भासिनि,
निज जन हृदयोल्लासिनि, स्रुति पुरान-बरनी;
दारिद-दुख-दल नासिनि, उर उत्साह-प्रकासिनि,
सान्ति सतत अभिलासिनि, त्रिभुवन-मन-हरनी।

उपालम्भ

मोहन अजहुँ दया हिय लावौ ;
मौन-मुहर कबलौं टूटैगी, हरे ! न और सतावौ।
खबर बसन्तहु की कछु तुमकों, बिरद-बानि बिसराई,
ऐसी फूल रही सरसों सी, तव नयनन में छाई ;

अचल भये सब अचल, देखिये, सरि से अस्रु बहावैं ;
सूरज पियरे परे, मोह-वस, चिन्तित दौरे जावैं ;
द्रुम तक हू के दृग नव-किसिलय, रोइ भये अरुनारे,
दारुन देस-दसा लखि बौरे, ये रसाल चहुँ सारे ;

अबला-लता-कलेवर कोमल, कम्पित भय दरसावैं,
लम्बी लेत उसाँस जानिये, जबै हृदय लहरावैं ;
कारी कोयल कूक कलाकल, जदपि गुहार मचावत,
चहुँ अरन्य-रोदन सम सुनियत, कछु न प्रभाव जनावत ;

लखियत ना सद्भाव कमल अब, कुसुमित मानस माँहीं,
कोरी प्रकृति छटा बस सुन्दर, तथा रही कछु नाहीं ;
जन्म-भूमि निज ! अरे साँवरे ! याकौ हित अभिलाखौ,
अर्ध दग्ध जड़ दसा बीच अब, अधिक न याकों राखौ।

बसन्त-स्वागत

; मंजु रसाल मनोहर मंजरी, मोर पखा सिर पै लहरैं,
नवेली नवेलिन बेलिन में, नवजीवन-जोति छटा छहरैं ;
क-भृंग-सुगुंज सोई मुरली, सरसों सुभ पीत पटा फहरैं,
वन्त विनोद अनन्त भरे, ब्रज-राज वसन्त हिये बिहरैं।

जय बसन्त ! रसवन्त सकल सुख-सदन सुहावन.
मुनि-मन-मोहन भुवन तीन-जिय प्रेम गुहावन !
जय सुन्दर स्वच्छन्द-भावमय ! हिय प्रति परसन !
जय नन्दन वन सुरभित-सुखद-समीरन सरसन !

जय मधुमाते मधुप-भीर को चहुँ दिसि छोरन,
ललित लतान वितानन में दुति-दलहिं-विथोरन !
जय अनूप आनन्द अमित अति अटल प्रदरसन,
जय रस-रंग-तरंग, वेलि अलवेलिन बरसन !

करिवे स्वागत आप हरन त्रयताप सकल थल,
जड़-जंगम जग-जीव जनौ जाग्यौ जीवन-जल;
जो तरु विथित-वियोग सदा दरसन तव चाहत,
नौचि नौचि कच-पातनि अस्रु-प्रवाह प्रवाहत,

देखहु किसलय नहीं आँखि अति अरुण भई तिन,
रोवत रोवत हाय थके ! अब टेर सुनौ किन ?
तुम्हरी दिसिहिं निहारि पुलकि तन-पात डुलावत,
कर सों मानहुँ मिलन तुमहिं निज ओर बुलावत;

बौरे नहीं रसाल बने बौरें तव कारन,
वलिहारी तव नेह नियम निठुराई धारन !
तुम सों कठिन कठोर और जग दूसर दीख न,
साँचो किय निज नाम "पंचसर को सर तीखन !"

तौहू मृदुल स्वभाव धारि जो प्रेमिन भावत,
करनौ वाकी ओर जाहि सो प्रेम लगावत;
लखि तुम्हरे पद-कंज रंज सब भूलि भूलि तन,
साजि-साजि सँग ललित लहलही लौनी लतिकन-

भाँति-भाँति के बिटप-पटनि सजिबे ही आवत,
कोऊ फल कोऊ फूल मुदित मन भेटहिं लावत।
"जयति !" परसपर कहत पसारत आपनि डारन,
मनहुँ मत्त मन मिलन मित्र कर करगर डारन;

'आवहु ! आवहु ! बेगि अहो ! ऋतुगन के नरपति !
तरु-वृन्दनि को लखहु आप सोभा की सम्पति।'
वह देखौ नव कली भली निज मुखहिं निकारति,
लगि-लगि बात-प्रभात गात अरसात सँभारति;

प्रथम समागम-समर जीति मुख मुदित दिखावति,
लहकि-लहकि जनु स्वाद लेन को भाव बतावति;
मुखहिं मोरि जमुहाति भरी तन अतन-उमंगन,
जोम-जुवानी जगे चहत रस-रंग-तरंगन !

वह देखौ अलि-कंज कली कल-कुंज गुँजारत !
मानहुँ मोहन मनहिं मदन को मन्त्र उचारत।
ठौर-ठौर मधु-अन्ध भयौ, वह देखौ झूमत !
कबहूँ जापर, वापर, यों सब ही पर घूमत।

सुन्यौ प्रथम रस-रास रच्यौ श्रीपति-सम कानन,
गूँज्यो वृन्दा-बिपिन मुरलिधर मुरली – तानन,
कटि पीताम्बर मटकनि गति जन-मनहिं चुरावन,
चुम्बन करि भरि अंग वियोगिन-जीय जुरावन,

रच्यौ रास यहि भाँति नृत्य कर संग छबीलिनि,
परम प्रेम-परिपूर्ण अंग रस-रंग-रंगीलिनि,
वह देख्यौ हम आज रास-रस रहस-रंग मनु,
मकर ललित अति निपट प्रकृति कौ जो निरंग तनु।

उत तो प्यारौ कृष्ण, कृष्ण इत अली विराजत;
पीत पटी उत कसी, पीत इत रेख सुभ्राजत;
गोपिकानि के संग बितै बनवारी आवन,
बनवारी नव कली संग इत पटपद धावन,

उत ब्रज-बाला मुग्ध-करनि मुरली-ध्वनि सोहति,
इतहु नेह-नद द्रवत अली-गुंजार विमोहति।
चित सों चुम्बन करत अंग पर कलिका भेंटत,
करि वियोग में योग दुसह दुख-दाहनि मेटत।

उत बनमाली रसहिं लेत गहि गोपिनि कुंजनि,
बनमाली अलि इतहु छकत रस कलिका-पुंजनि;
झपटि लिपटि उत गोपिनि-मुख राजत स्रम-सीकर,
ओस-बिन्दु इत कसी पाँखुरी रलत बसीकर।

अधर अधर रस पियौ स्याम उत लै गोपिन कहँ;
पीवत मधुप पराग इतै प्रस्फुटित कलिन महँ;
जय पद पद पर परम प्राकृतिक प्रेमहिं पीवन,
जीवन-ज्योति जगावन जय जीवन जग-जीवन!

फूलत कच-कचनार अमार अनार हजारन,
किंसुक-जाल तमाल विसाल रसाल पसारन;
वह देख्यौ कुल-बकुल घिर्‌यौ जो आकुल मधुपन,
चोरत चहुँधा चित्त निचोरत चारु मधुरपन।

कहूँ पलट के पुहुप चटकि चटकत चित चायन;
बौर आनँद मनहुँ प्रेम घोरे मन भायन!
जगत-जननि कौ महा अमंगल-मूल लजावन;
मानहुँ सब जग-बन्दन बन्दन-वार लजावन!

मुकुलित अम्ब-कदम्ब-कदम्बनि पै कल कूजत,
"केहू! केहू!" मोर अलापत आसा पूजत;
अवरेखहु निज स्वच्छ छटा जमुना-जल-फूलन,
सटकि कुंज-बन-सघन घटा नव फूले फूलन।

द्रुम-डारनि के बीच चपल-चहचही चुहूकनि,
कोकिल-कीर-कपोत-कलित कल कंठ कुहूकनि;
मानहुँ करि स्तुति-पाठ धरम की ध्वजा उड़ावत,
"हे भारत अब उठौ तजौ आलस" समझावत।

ये सुबोल द्विज अपर डहडही डारन बोलत,
करसायल-मन-हरनि हरनि-सँग इत-उत डोलत;
दुबरी गहि मुख तृनहिं सुरभि चहुँ दिसि जहँ जोवति,
श्री गोविन्द-गोपाल-कृष्ण-सुधि करि जनु रोवति।

बछरा अलप अजान प्यार भरि थरकत, फरकत,
लभरत, झिझकत, बिझकत, फुरकत, कुदकत बबकत!
देखहु जमुना-पुलिन सुभग सोभित रेती-छबि,
चिलकति, झलकति मनहुँ कान्ति प्रगटी खेती फबि!

किम्बा परम पवित्र रची बेदी मन-भावनि,
तीन लोक-छबि सची मनहुँ आनन्द बढ़ावनि;
ललकि हिलोरैं खाति कलिन्दी रस सरसावति;
नीलाम्बर तनु धारि कृष्ण मिलिबे जनु धावति!

भरे सरोवर स्वच्छ नील जल नलिन रहे खिलि,
सारस-हंस-चकोर घोर सब सोर करैं मिलि।
जुही गन्धि सों पुही चुई परिमल सुचि धावति;
धुहुप-धूप-धूसरित हीय सब सूल नसावति।

हरी घास सों घिरे तुंग टीले नभ-चुम्बत !
तिन में सीधी सरल सरग दिसि उरग उलम्बत,
जव सों बहरैं लहरैं छहरैं तेरी समुदित,
बिन कारन नहिं ज्ञात आप आपहिं सों प्रमुदित;

कोऊ सरसों-सुमन फूल जौ सिर सौं बाँधत,
गरियारिन गोरिन के सँग कोउ चुहल मचावत,
बरस दिना की आस पुजावन, कसक मिटावन,
नाचि सजाय-बजाय लगे गावन में गावन,

कहुँ गँवार गम्भीर बसन्ती बसन रँगावत,
जो तव स्वच्छ स्वरूप सदा सब के मन भावत;
ऊधम उमग्यो परत रँग्यो जग तव रस-रागत,
गारी-पिचकारी-तारिन सों तेरो स्वागत !

कोउ बावरे भये गुलालहिं मगन उड़ावत,
करि फगुवारन लाल गीत फागुन के गावत;
हुरिहारिन की धूम और रंगरेलनि-पेलनि,
देखहु तिनकी अहा ! खेल-खेलनि भकभेलनि;

मोद-उदधि की लहरि सबन उनमत्त बनावति,
तोरि लाज-कुल-दृढ़ पुल कों जनु उमगति आवति;
सीत और भय-भीत कबहुँ परवसहिं नचावत;
ग्रीपम के गहि केस स्वेद उर में छलकावत,

सीतल-मन्द सुगन्धि-सनी निज वायु बहावत,
याही सों तू साँचमाँच 'ऋतुराज' कहावत !
भारत आरत ताकी कटक करेजो-करकत,
पहुँच्यो दसा वसन्त कहाँ सों ररकत-ररकत !

ऋतु-सुमौलि-मनि अहो! यहाँ के हरहु त्रितापन,
प्रेमवन्त! गुनवन्त! करहु सुख-सान्ति सुथापन!
हमहूँ एक गंवार गाम-रस-पुलकित तन-मन,
जासों हमरो कह्यो सुन्यो छमियो सब भगवन,

महिमा अपरमपार पार को पावत पूरन,
सत्य वर्ननातीत गीत तव करत सुपूरन।

पावस-प्रमोद

जय जग-जीवन जलद नवल-कुलहा-उलहावन,
बिस्व-बाटिका अमल बिमल वन बारि बहावन;
जीवन दै बन वनसपती में जीवन लावन,
गरु ग्रीपम पन-दरप दलन, मन मोद मनावन;

जय मन-भावन, बिपत-नसावन, सुर-सरसावन,
सावन को जग ठेलि केलि जल चहुँ बरसावन!
जय घनस्याम ललाम प्रेम-रस उरहि दृढ़ावन,
फूल भरी बसुधा सिर सारी हरी उढ़ावन?

बाँधि मंडलाकार पुरन्दर को धनु पावन,
तरजि दिखावन गरजि, लरजि मन भय उपजावन,
अदभुत आभावन्त अंग अति अमल अखंडत,
घुमड़ि-घुमड़ि घन घनो घूम घिरि घोर घमंडत;

कारे कजरारे मतवारे धुरवा धावत ;
सुख सरसावत, हिय हरसावत, जल बरसावत ;
उछरि-उछरि जल-छाल छिरकि छिति छर-रर छमकति ,
चंचल चपला चमचमाति चहुँधा चलि चमकति ।

मनु यह पटिया परी माँग ईंगुर की राजति ,
छाँह तमालन स्याम संग स्यामा जनु भ्राजति ;
घर कोठनि की तरकनि, दरकनि, माँटी सरकनि ,
देखहु तिनकी अरर-अरर ऊपर सों ररकनि ।

सुखद सुरीलो गामन में ललना-गन-गामन ,
भरि उछाह घर सों तिन आमन झूलन जामन ;
पवन उड़त उर के पटुकनि झटपटहिं सम्हारन ,
मंजुल लोल कलोलनि बोलन विविध मल्हारन ।

एक-एक कों पकरि बुलावन, कर गहि लावन ,
जोरावरी चलावन, झूला झमकि झुलावन ;
मधुर मिसमिसी सों मचकी दै जाहि हिलावन ,
"राखो ! मेरी सोंह ! मरी !" कहि ताहि रखावन ।

ग्रीषम गयो पराइ, सकल थल सोहत सीतल ,
देत लैन नहिं चैन रैन तउ मसक-दंस-दल ।
बरन-बरन के बादर सों कहुँ परति फुवार अति ,
भीनी-भीनी गन्ध गहति, वर बहति पवन-गति ।

देखहु मनहिं प्रसन्न ललित मृग-छौननि-आनन ,
डोलनि तिनकी कानन, करि ऊपर कों कानन ;
रज-विहीन पतरी लतिकन को देखहु लहकन ,
घूँघट-पट सों मुख निकारि चाहत जनु चहकन ।

'लगत पलास उदास, असोक ससोकहु भारी,
बौरे बने रसाल, माधवी लता दुखारी,
तजि-तजि निज प्रफुलितपनौ, बिरह-बिथित अकुलात।
जड़ हू ह्वै चेतन मनौ, दीन-मलीन लखात,
एक मांधौ-बिना!'

'नित नूतन तृन डारि सघन बंसी-बट छैयाँ,
फेरि-फेरि कर-कमल, चराई जो हरि गैयाँ,
ते तित सुधि अति ही करत, सब तन रहीं भुराय,
नयन स्रवत जल, नहिं चरत,व्याकुल उदर अघाय,
उठाये म्हौं फिरैं!'

'वचन-हीन ये दीन गऊ दुख सों दिन बितवतिं,
दरस-लालसा लगी चकित-चित इत-उत चितवतिं,
एक संग तिनकों तजत, अलि कहियो, ऐ लाल!
क्यों न हीय निज तुम लजत, जग कहाय गोपाल!
मोह ऐसो तज्यो!'

'नील-कमल-दल स्याम जासु तन सुन्दर सोहै,
नीलाम्बर बसनाभिराम बिद्युत-मन मोहै,
भ्रम में परि घनस्याम के, लखि घनस्याम अँगार,
नाचि-नाचि ब्रज-धाम के कूकत मोर अपार;
भरे आनन्द में!'

'यहँ को नव नवनीत मिल्यो मसरी अति उत्तम,
भला सकै मिलि कहा सहर में सद या के सम?
रहै यही लालो अजहुँ, काढ़त यहि जब भोर,
भूखो रहत न होइ कहुँ, मेरो माखन-चोर!
बँध्यो निज टेव को!'

सत्यनारायण जी के ग्रन्थ

अनुवाद—उत्तर रामचरित, मालतीमाधव, देशभक्त होरेशस (अँगरेज़ी से)।

मुक्तक संग्रह—हृदय-तरंग।

श्री वियोगीहरि

व्रज-वल्लभ और व्रजभाषा के प्रकाम प्रेमी वियोगी हरि जी ने आजकल साहित्य से संन्यास ले लिया है। भावुक-हृदय तो आप हैं ही, अतः आजकल दिल्ली में रह कर तन-मन-धन से अछूतों की सेवा कर रहे हैं। 'हरिजन-सेवक' नाम का एक हिन्दी-पत्र भी आपके सम्पादन में निकलता रहा है।

वियोगी हरि में अच्छी कवि-प्रतिभा है। आपका हृदय स्वच्छ, विशाल और सरस है जो उसके अनुरूप ही है। 'प्रेम-शतक', 'प्रेम-पथिक' और 'प्रेमांजलि' में आपकी व्रजभाषा की उत्कृष्ट और हृदय स्पर्शिनी कविताएँ मिलती हैं। 'भावना', 'अन्तर्नाद' आपकी गद्य-काव्य की अच्छी पुस्तकें हैं। गद्य-काव्य के क्षेत्र में वियोगीहरि ने उस समय कार्य किया जिस समय उस क्षेत्र में प्रचुर संख्या में कवि न थे।
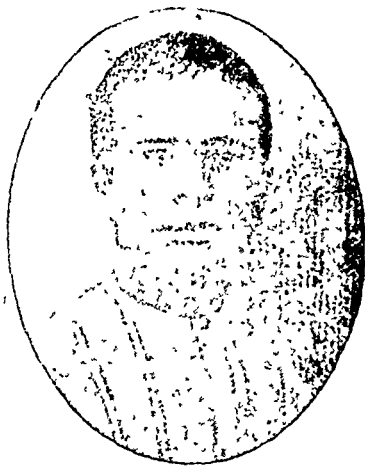
वियोगी हरि की प्रख्यात रचना 'वीर-सतसई' है। दोहा-शैली में यह वीर रस का सराहनीय काव्य है। कुछ दोहे तो वस्तुतः बड़े ही सुन्दर और सुगठित हैं। इस पुस्तक पर कवि को 'सम्मेलन' ने १२००) का 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' देकर सम्मानित किया है।

हरिजन-आन्दोलन में आने के पश्चात् वियोगीहरि जी की राष्ट्रीय-भावना को भी उत्तेजना मिली और उसी आवेश में आपने 'चरखे की गूँज', 'चरखा स्तोत्र' और 'असहयोग-वीणा' नाम की साधारण पुस्तकें लिखीं। वीर-सतसई में यों तो विचार अच्छे हैं; किन्तु भावों की नवीनता और काव्य-कला प्रवीरता नहीं—यहाँ तक कि भीम के द्वारा दुःशासन के रुधिर-पान तक की प्रशंसा है। पद्यमय ग्रन्थों के सामने आपके कुछ गद्य ग्रन्थों में विशेप साहित्यिक सौष्ठव है।

सत्य-वीर

सुन्दर सत्य-सरोज सुचि, बिगस्यौ धर्म-तड़ाग;
सुरभित चहुँ हरिचन्द कौ, जुग-जुग पुन्य-पराग।
फुँकन देत नहिं मृत सुवनु, माँगत हिय-तनु-पीर;
निरखि नृपति-सत-धर्म-धृति, धृति हूँ भई अधीर।
पद्मा-पति पट पीत क्यों, खस्यौ नीर-निधि-तीर ?
पतिहिं फारि शैव्या दियौ, निज-अँग-आधो चीर !
जौ न जन्म हरिचन्द कौ, होतो या जग माँह,
जुग-जुग रहति असत्य की, अमिट अँधेरी छाँह।
नहिं बिचल्यौ सत-पन्थ तें, सहि असत्य दुख-द्वन्द,
कलि में गाँधी-रूप ह्वै, पुनि प्रकट्यौ हरिचन्द।

युद्ध-वीर

केसरिया वागो पहिरि, कर कंकण, उर माल,
रण-दूलह ! वरि लाइयौ, दुलहिन विजय-सुचाल।
औघट घाट कृपाण कौ, समर-धार विनु पार,
सनमुख जे उतरे तरे, परे विमुख मँझधार।
दीठि विमुख ढीठी ठवै, गिनत न ईठ-अनीठ,
घालत दै-दै पीठ सर, तानि-तानि सर-पीठ।
धनि-धनि, सो सुकृती व्रती, सूर-सूर, सत-सन्ध !
खंग खोलि खुलि खेत पै, खेलतु जासु कबन्ध।
लरतु काल सों लाख में, कोई माई कौ लाल,
कहु, केते करवाल कों, करत कंठ-कल माल ?
धन्य, भीम ! रण-धीर तूँ, धरि अरि-छाती पाव,
भरि अँगुरिनि शोणितु पियौ, इन मूँछनि दै ताव !
धन्य, कर्ण ! रिपु-रक्त सों, दियौ पूरि रण-कुंड,
करि कन्दुक अति चाव सों, उछरि उछारे मुंड !
सहज वजावत गाल त्यौं, सहज फुलावन गाल,
काल-गाल में रिपु-दलै 'कठिन गेरिवो हाल।
रण सुभट्ट वै भुट्ट-लौं, गहि असि कट्टत मुंड,
उठि कवन्ध जुट्टत कहूँ, कहुँ लुट्टत रिपु-रुंड।

वीर-नेत्र

होति लाख में एक कहुँ, अग्नि-वर्न वह आँख;
देखत हीं दहि करति जो, दुवन-दीह दलु राख।
नयन कंज, खंजन-मधुप, मद, मृग, मीन समान;
लोहितु और अँगारु मैं, द्वै अनुपम उपमान।

सुभट-नयन अंगारु पै, अचरज एक लखातु,
ज्यौं-ज्यौं परतु उमाह-जलु, त्यौं-त्यौं धधकत जातु।
जाव फूटि रति-रँग-रली, अलसौंहीं वह आँख,
सहज-ओज-ज्वाला-ज्वलित, चिरजीवौ जुग लाख।
सुरत-रंगु कहँ दृगनि में, कहँ रण-ओज-उदोतु,
यातें उज्ज्वल होतु मुख, वाते कज्जल होतु।
युद्ध-रत्त-दृग-रक्त की, कहा रक्त-सँग लाग,
लागतु यातें दाग वह, मेटतु हिय कौ दाग।
सहज सूर-नैननि लख्यौ, सील-ओज-संचारु,
एकै रस निवसतु तहाँ, पानिय औरु अँगारु।
जदपि रुद्ध-बल-तेज कौ, कियौ न प्रगटि प्रकासु;
दिपतु तऊ अँखियान ह्वै, अन्तर-ओज-उजासु।

खड्ग

पर्‌यौ समुझि नहिं आजु-लौं, या अचरजु को हेतु;
हर्‌यौ असित असि-लता में, सुजसु-चारु-फलु सेतु।
जदपि हतो पानिप चढ़्यौ, अचरजु तदपि महान;
नित-प्रति प्यासी ही रही, लही न तृप्ति कृपान!
बसति आपु लघु म्यान में, वह कृपान लघु गात,
त्रिभुवन में न समातु पै, सुजसु तासु अवदात।
प्रलय-कारिनी तुव, छता! लपलपाति तलवार;
खात-खात खल-सीस जो, लई न अजहुँ डकार!
बसै जहाँ करवाल! तू, रमै तहाँ किमि बाल?
एक संग निवसति कहूँ, ज्वाल, मालती-माल?
धारि सील, असि-बालिके! अब तू भयी सयानि;
अरी हठीली! कित तजी, वह इठलाहट-बानि?

लहरति, चमकति चाव सों, यों तरवार अनूप;
धाय डसति, चौंधति चखनि, नागिनि-दामिनि-रूप!
करति मरम तरवार जो सोइ प्रखर तरवार;
जानत कबहुँ कृपा न करि, कहिय कृपान करार!
सुभट लाल, असि-दूतिका, ठाढ़ी, सुमुखि-सयानि;
मानिति वसुधा-बाल कौ, यही गहावति पानि।
रण-नायक-भामिनि तुम्हीं, कुल-कामिनि करवाल!
अबहुँ प्रीतम-कंठ तू. भई लपटि रति-माल!
सोभित नील असीन पै, रुधिर-बिन्दु-कृत जाल!
लसति तमाल-लतान पै, मनहुँ बधूटी-माल!

भीष्म-प्रतिज्ञा

रहि हौं अस्त्र गहाय कै, रखि निज प्रन की लाज;
कै अब भीषम ही यहाँ, कै तुमहीं, जदुराज!
सरनि ढाँपि रवि-मंडलहि, शोणित-सरित अन्हाय;
तेरी ही सौं तोहिं हरि! रहिहौं अस्त्र गहाय।
इत पारथ-रथ-सारथी, उत भीषम रन-धीर;
तिलहूँ नहिं टारे टरैं, दुहूँ वज्र-प्रन-बीर।
मुख श्रम-सीकर, दृग अरुन, रन-रँग-रंजित केस;
फहरतु पटु, गहि चक्र हरि, धाये सुभट-सुवेस!
कच रज-रंजित, रुधिर मिलि, झलकत श्रम-कन अंग,
फहरतु पटु गहि चक्र हरि, धाये करि प्रन-भंग!
प्रन कीनों बहु वीर जग, टेकहुँ गही अनेक;
पै भीषम-व्रत आजु लौं, है भीषम-व्रत एक!
सम सरि कासों कीजियै, मिल्यौ नाहिं उपमान;
भीषम-सों भीषम भयौ, वह भीषम व्रतवान!

युद्ध-दर्शन

सुन्यो प्रलय-घन-घोर लौं, जब सैनिक रण-संख;
किलकि-किलकि कूदे समर, भरि उड़ान बिनु पंख!
चली चमाचम कोप सौं, चकचौंधिनि तरवार,
पटी लोथ पै लोथ त्यौं, बही रक्त-नद-धार!
नहिं यह झरना गेरु कौ नाहिं शृंग यह स्याम;
असि-विदीर्ण कटि-कुम्भ तें, स्रवत शोण अविराम।
तुरँग, तोय, तरवार तहँ, निज-निज पूरन काजु;
[illegible]रि-धूम-लोहित मयी, सृजत सृष्टि मनु आजु।

अभिमन्यु

[illegible]इयौ चितवत चाव सौं प्रिया उत्तरा-ओर;
[illegible]ा जानैं, कब लौटि हौं, प्यारे पार्थ-किसोर!
[illegible]न्य, उत्तरा-उर-धनी! धन्य, सुभद्रा नन्द!
[illegible]नि भारत-भट अग्रनी! पार्थ-पयोनिधि-चन्द!
[illegible]न्य, पार्थ-चख-चन्द! हूँ, धन्य सुभद्रा-लाल!
[illegible]ातहुँ महारथीन सौं, कियौ युद्ध विकराल!

महाराणा प्रताप

[illegible]णु-अणु पै मेवाड़ के, छपी तिहारी छाप,
[illegible]रे प्रखर प्रताप तें राणा प्रबल प्रताप।
[illegible]गत जाहि खोजत फिरैं, सो स्वतन्त्रता आप,
[illegible]ेकल तोहिं हेरत अजौं, राणा निठुर प्रताप।

हे प्रताप! मेवाड़ में तुम्हीं समर्थ, सनाथ।
धनि! धनि! तेरे हाथ ए, धनि! धनि तेरो माथ!
रजपूतन की नाक तूँ, राणा प्रबल-प्रताप!
है तेरी ही मूँछ की, राजथान में छाप।
काँटे लौं कसक्यौ सदा, को अकबर-उर-माहिं?
छाँड़ि प्रताप-प्रताप जग, दूजो लखियतु नाहिं।
ओ, प्रताप मेवाड़ के! यह कैसो तुव काम?
खात खलन तुव खड्ग, पै, होत काल कौ नाम!
उमड़ि समुद्र-समुद्र लौं, हिले आपु तें आपु;
करुण-वीर-रस-लौं मिले, सक्ता और प्रताप!

छत्रपति शिवाजी

किधौं रौद्र-रस रुद्र कै, किधौं ओज-अवतार,
साह-सुवन सिवराज! तैं, किधौं प्रलय साकार?
रखी तुहीं सरजा सिवा! दलित-हिन्द की लाज;
निरवलम्ब हिन्दून कों तूँही भया जहाज।
यही रुद्र-अवतार है, यही सुभैरव-रूप!
येही भीषण भीम है, सिवा भौंसिला-भूप॥
औरँगहू तुव धाक तें, भाजतु भामिनि-भौन;
है लोहा तुव सँग, सिवा! लेनहार फिरि कौन?
नित-प्रति सेवा खलनु की, तोहिं कलेवा देत;
पेट खलावत, काल! तैं, तऊ आय रण-खेत।
गरब करत कत बावरे, उमँगि उच्च गिरि-अंग!
जस-गौरव सिवराज कौ, इत नभ तेहु उतंग!
"करकी क्यों आपुहि चुरी?" कहत हरम अकुलाय,
"सुन्या नाहिं, आवतु सिवा, समर-निसान बजाय?"

किते न तोपनु तें सिवा, दृढ़ गढ़ दिये ढहाय;
केते सुरँग लगाय कैं दिये न दुर्ग उड़ाय।
ह्वै तौ विजयी बिस्व में, अजित राम-गढ़-राज !
गहि कृपान अरि काटि हौ, राखि हिन्द की लाज।

महाराज छत्रसाल

छत्रसाल नृप ! नाम तुव, मंगल-मोद-निधान,
सुमिरि जाहि अजहूँ बनिक, खोलत प्रात दुकान !

चम्पत को बच्चा तुहीं, है इक सच्चा शेर,
जब्बर बब्बर-वंस के, किये न केते जेर !

रैयत हित-हिय-दानु दिय, हथियारन-हित हाथ;
छत्रसाल; धनि ! कृष्ण-हित, नैन, धर्म-हित माथ !

गहि कृपान-कुस नृप छता, दियौ तेहिं नित दानु;
तऊ कृतघ्नी काल ! तैं, नहिं मानत एहसानु।

ग्रसित ग्राह-अवरंग मुख, खंड बुँदेल-गयन्द,
उमंगि उधार्‌यो धाय, धनि, हरि-इव चम्पत-नन्द !

धनि, छत्ता ! तुव खग्ग, धनि ! रण-अडग्ग पवि-देह;
बहु मूँछनवारेन कों, मरदि मिलायौं खेह।

नहिं छत्ता ! परवाह कछु, तोहिं साह के द्वार,
है तू ब्रज-दरबार कौ, ऐंडदार सरदार !

छत्रसाल नृप-धाक तें; बड़े बड़े थहरायँ;
कहुँ 'छकार' के सुनत ही, छूटि न छक्के जायँ !

असि-भुवंगिनी-अंगना; सङ्ग समर-संजोग;
भोगैं भुज-भुजगेन्द्र तो छता ! छत्रपति-भोग !

कहूँ विपत, कहुँ भयौ, तूँ, सम्पत, चम्पत-लाल !
दुष्टन-हित करवाल भो, अरु इष्टन-हित ढाल !
चम्पत ! खंडबुँदेल की, तैं पत राखनहारु ;
डूबत हम हिन्दून कौं; तुव कुमारु कनधारु !

दुर्गावती

धन्य सती दुर्गावती ! करि गढ़-मंडल राज।
रखी गौड़वानैं तुहीं खड्ग-धर्म की लाज !
बज्र-कवच तनु, कन्ध धनु, कर कृपाण, कटि ढाल,
गढ़-मन्डल-दुर्गावती, रण-दुर्गा विकराल,
मत्त मुग़ल-दल दलमल्यौ, गढ़-मन्डल रण ठानि !
धनि, दुर्गा दुर्गावती ! रखी तुहीं कुल-कानि।

लक्ष्मीबाई

तजि कमलासनु कर-कमलु, गहि तुरङ्ग-तरवार,
कुल - कमला कीली भई, झाँसी-दुरग-दुआर,
हौं देख्यो अचरज अवै, झाँसी-दुरग-अपार,
दृग-कमलनि अंगार, त्यौं, कर-कमलनि तरवार !
भई प्रगटि रण-कालिका, गढ़ झाँसी-परतच्छ,
सुभट सँहारे लच्छमी, लच्छ-लच्छ कटि लच्छ !
जय झाँसी-गढ़ लच्छमी ! राजति त्रिविध अनूप,
गति चपला, द्युति चन्द्रिका, समर चंडिका रूप।

विविध

जाव भलैं कुरु-राज पै, धारि दूत-वर वेस,
जइयो भूलि न कहुँ वहाँ, केसव द्रौपदि-केस !
व्योम-वान सररात औ, तड़कि तोप तररात !
सुथिर अथिर थहरात त्यौं, दुर्ग-दीह अररात !

लेखेही ऋतु लेखियत, नितप्रति ग्रीषम नाथ,
जठर-ज्वाल तें जरि रहे, हम अनाथ जग-नाथ!

बिना मान तज दीजियौ, सुरगहुँ सुकृति-समेत,
कहौ मान, तौ कीजियौ, नरकहुँ नित्य निकेत!

अन्तहुँ अरिहिं न सौंपिये, करियौ प्रण प्रतिपाल,
निज भाँवरि की भामिनी, निज कर की करवाल।

बीर-बधू! तुव सवति वह, विजय-बधू नवबाल,
तासु गरें गेरति तऊ, कहा जानि रति-माल!

अमित-भीत अरि नारियाँ, सगबग भाजति जाहिं,
आगे देखति नाहिं, त्यौं पाछें हेरति नाहिं।

दनुज दलन सौमित्रि-सर, मारुति मुष्टि-प्रहार,
भीषम-अतुल विक्रम, तिहूँ, ब्रह्मचर्य-व्रत-सार।

दृगनि ओज लाली लसै, रुधिर पियाली हाथ,
काल-नटी काली किलकि, नटति कपाली-साथ।

साधतु साधनु एक ही, तजि अनेक बुधि-सीम,
धनुष-सिद्ध अर्जुन भयौ, गदा-सिद्ध भो भीम।

लै असि-हल, जोती मही, बोयो सीस सुधान,
करि सुचि खेती, जस लुन्यो, धनि रजपूत किसान!

है सबलनु कों सूल जो, करत निबल-प्रतिपाल,
वीर-जननि को लाल सो, अहै धर्म की ढाल!

करै जाति स्वाधीन जो, साँचो सोइ सुपूत,
यौं तौ, कहु, केते नहीं, कायर कूर कुपूत,

फरति न हिम्मति खेत में, बहति न असि-व्रत-धार,
बल-विक्रम की बोरियाँ, बिकतिं न हाट-बजार।

नहिं बद्दल-दल-बल यहै, तडित न यह, किरपान,
नहिं घन गाजत गहगहे, बाजत तुमुल निसान।
लिखे हमारे भाल पै, अंक न अर्थ अधीन,
ज्यों पानीपत पै भये, हम पानीपत-हीन।

को न अनय-मग पगु धर्यौ, लहि इहि कुमति कुदानु,
न्याय-पतित भे भीषमहुँ, भखि दुरजोधन-धानु।
अथयौ सो अथयौ, न पुनि, उनयौ भीषम-भान,
आर्य - सक्ति - जय-पद्मिनी, परी तबहिं ते म्लान।

जथा राम - रावन - समर, नीरद-नाद - विहीन,
भारत-युद्ध अपूर्न त्यौं, बिना कर्न प्रन-पीन;
'जराधीन अँग छीन हौं, दीन दन्त-नख-हीन,'
नहिं ऐसी चिन्ता कहूँ, कबहुँ केहरी कीन।

रचि-रचि कोरी कल्पना, बहुत जल्पना मूढ़,
सहज सती अरु सूर कौ, गति रहस्य अति गूढ़।
निबल, निरुद्यम, निर्धनी, नास्तिक, निपट निरास,
जड़, कादर करि देतु है, नरहिं अन्धविस्वास।

भाजत भग्गुल भभरि जहँ, खुलि खेलत तहँ बीर,
जरत सुरासुर जाहिं लखि, पियत ताहिं सिव धीर;
मतवारे सब ह्वै रहे, मतवारे मत माहिं,
सिर उतारि सतधर्म पै, कोउ चढ़ावत नाहिं,
तजि देती जो पै कहूँ, कोइल काग-कठोर
तौ होती पच्छीनु में, साँचेहुँ तैं सिरमौर।
कारण कहुँ, कारज कहूँ, अचरज कहत बनैन,
असि तौ पीवति रकत पै, होत रकत तुव नैन।

पावस ही में धनुष अव, सरित-तीर ही तीर,
रोदन ही में लाल दृग, नौरस ही में बीर।

टेक-टेक केते कहत, हठहू गहत अनेक,
पै कहँ हठ हम्मीर की, कहँ प्रताप की टेक।

नैननि नित किन राखिये, तिनकी पायन-धूरि,
पूरि पैज जे मरद की, भये युद्ध मधि चूरि।

भर्यौ रक्त नहिं, जिन दृगनि देखि आत्म-अपमान,
क्यों न विधे तिन में बिधे, शूल विषम विष-बान।

नभ जिमि विन ससि सूर के, जिमि पंछी बिन पाँख,
विना जीव जिमि देह, तिमि बिना ओज यह आँख।

लखि सतीत्व-अपमानहूँ, भये न जे दृग लाल,
नीवू नौन निचोरिये, छेदि फेरिये हाल।

श्री वियोगीहरि जी के मुख्य ग्रन्थ

काव्य—वीर-सतसई।

गद्य-काव्य—अन्तर्नाद।

संग्रह—व्रज-माधुरी सार।

गद्य—साहित्य-विहार, प्रेम-योग।

—:卐:—

मिश्र-बन्धु

रावराजा डाक्टर श्यामबिहारी मिश्र, रायबहादुर एम० ए०, डी-लिट्०
रायबहादुर पंडित शुकदेवबिहारी मिश्र, बी० ए०

पंडित बालदत्त जी मिश्र के वंश-भूषण रावराजा डाक्टर श्याम बिहारी का जन्म ग्राम इटौंजा ज़िला लखनऊ में संवत् १६३० में और छोटे मिश्रजी का संवत् १६३५ में हुआ। रावराजा संवत् १६५० में

गणेशविहारी मिश्र　　शुकदेवविहारी मिश्र　　श्यामविहारी मिश्र

अँगरेज़ी में प्रथमश्रेणी में विशेष योग्यता के साथ बी० ए० तथा १६५३ में एम० ए० पास कर डिप्टी-कलक्टर हुए। कोआपरेटिव विभाग में रजिस्ट्रार आदि कई प्रतिष्ठित पदों पर रह कर डिप्टी-कमीश्नर नियुक्त

हुए। संवत् १६५८ में पेन्शन पाकर ओरछा राज्य में दीवान बनाये गये। अब आप वहीं प्रधान-मन्त्री हैं। संवत् १६८५ में रायबहादुर १६६१ में ओरछा राज्य से रावराजा तथा १६६५ में प्रयाग-विश्वविद्यालय से डी० लिट्० की उपाधियाँ मिलीं। संवत् १६६७ से १६७१ तक आप छतरपूर राज्य में भी दीवान रहे।

छोटे मिश्रजी ने संवत् १६५७ में बी० ए० और १६५८ में वकालत की परीक्षा पास की तथा ५ बरस तक वकालत कर मुन्सिफ होकर जज हुए। तत्पश्चात् साढ़े पन्द्रह बरस तक छतरपुर राज्य में दीवान रहे। संवत् १६८३ में आपको सरकार से राय बहादुर की उपाधि मिली।

संवत् १६५५ से दोनों मिश्र-बन्धु साथ साथ साहित्य-सेवा कर रहे हैं। दोनों सफल समालोचक, सुकवि, सुयोग्य लेखक और साहित्य के प्रगाढ़ पंडित हैं। आपने ही सबसे प्रथम हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक सुव्यवस्थित इतिहास लिख कर इस ओर हिन्दी-संसार का ध्यान आकृष्ट किया और 'हिन्दी-नवरत्न' लिख कर मार्मिक-विवेचनात्मक आलोचना का पथ-प्रदर्शित किया।

दोनों बन्धुओं ने ब्रजभाषा में पर्याप्त सुन्दर रचनाएँ की हैं, जिनमें सजीव और साकार वर्णन बड़ा ही प्रभाव-पूर्ण है। आपका शब्द-संगठन सर्वथा भाव-प्रभाव-पूर्ण रहता है। वाक्य-विन्यास सुव्यवस्थित, संयत और सबल होता है तथा प्रसाद, ओज और माधुर्य गुण अच्छे रूपों में मिलते हैं।

मिश्र-बन्धुओं ने साहित्य के एक-दो क्षेत्र में ही कार्य नहीं किया, वरन् उसके प्रायः सभी प्रमुख अंगों की पूर्ति का सुप्रयत्न किया है। आप नाटककार, इतिहास-लेखक, काव्य-शास्त्र-मर्मज्ञ, सम्पादक और टीकाकार भी हैं। अतएव कहना चाहिए मिश्र-बन्धुओं में बहुमुखी प्रतिभा है।

जीवात्मा और परमात्मा

है तौ जीव औसि पै जू थिरकै अथिर एक,
सक्ति कैधौं व्यक्ति, यह मरम ललाम है,
दास-भाव रामानुजवारो ठीक वैठे कैधौं,
सीमित अद्वैतवाद साँचो गुन धाम है;
इतै तौ विचार-बल सबै दरसात पंगु,
भाष्यो तुलसी हू, ह्याँ तरक को न काम है,
ररंकार मूल चाहै दसरथनन्द मानौ,
साँचो बिसवास मैं लखात रामनाम है।

सब गुन-हीन, सब करम-विहीन पुन्य,
पापन सों छीन, रूप-रंग हू सों न्यारौ है,
सब सों विरक्त, सबही सों अनुरक्त,
वासनानि को न भक्त, वासनानि को सहारौ है;
अक अरु आनँद सों रहत उदास तऊ,
सत् - चित - आनँद, जगत - रखवारौ है,
सब सों पृथक पुनि सब के समीप,
जगदीस, जग-रूप, एक ईस्वर हमारौ है।

नेति-नेति ईस्वर को वेद औ पुरान भाषैं,
ताके बल-तेज को न अन्त दरसानो है,
होत अवतार जो विसेख ईस अंस-भव,
ताहू को न बल-अन्त जग मैं लखानो है,
तदपि अमोघ ईस-बल की सकै न करि,
तुलना कछूक अवतार मनमानो है।
ईस को अनादर कियो न तिन करि जिन,
या विधि विचार अवतार सनमानो है।

अधम-उधारन की धारी है सुबानि कत,
अधम-उधारन सों जो पै सकुचात हौ,
दीन-बन्धु काहे ते कहावत जहान मैं जु,
दीन दुखहारन मैं धरे ढील गात हौ;

करुना-निधान की उपाधि तजि देहु जु पै,
साफ इनसाफ करिबे को ललचात हौ,
पतितन-पावन को छाँड़ौ नाम जो पै मो से,
पतित पुनीत करिबे को न सिहात हौ।

होते जो न मो से कूर-पतित जहान मैं तो,
कैसे तुम पतित-पुनीत कहवावते?
करते न ढेर हम पातक-पहार, तौ न,
करुना-निधान को बिरदु तुम पावते;

दोषन के जूहन को धारि, पछिताय जो न,
हा-हा! करि हम दीनताई दरसावते,
कढ़ते तौ कोमल तुम्हारे गुन-गुन कैसे,
कैसे पुनि भगत सुजस तुव गावते?

रावरी कृपा की कोर लहि कै कछुक गहि,
गरव गँभीर पाप-पुंजन कमायौं मैं,
देशन को चूर करि, सतगुन दूर करि,
कूर बनि केवल, कुगुन अपनायौं मैं,

सब को समान सतकार कै उदार ह्वै कै,
जग-उपकार मैं क्यौं न कन लायौं मैं,
आरत ह्वै भारत पुकारत है नाथ! अब,
पाहि-पाहि! रावरी सरन तकि आयौं मैं।

सुन्दरता-वर्णन

आई कहाँ सों इहाँ मृगलोचनि, रूप धरे रति सों अति नीको,
रेसम-तार से वार घने, परभा-मुख पेखि परे ससि फीको;
बाँधन-हेत मृगा-मन के, तव वीन समान बजे बरवानी,
कै यह मोहन-मन्त्र किधौं गुन-खानि सुधा-बसुधा सुखदानी।

चन्द छटा सी हँसी विलसी, निरखे मन जोगिन के हुलसावै,
त्यों रतनारे विलोचन हैं जिन सों मद-धार सी धावति आवै;
चारु, कृशोदर पै त्रिवली छवि-भार सों और वली छवि छाजै,
वेस वसीकर-जन्त्र समान, महा सुकुमार सरीर विराजै।

अन्धकार सम चारु, स्याम कच-रासि विराजै,
लम्बित लट अवलोकि धीर तपसिन को भाजै;
चंचल नागिनि सरिस रुचिर वेनी कटि परसै,
सीस-फूल कच-रासि-बीच मंगल-सम दरसै;

मकराकृत कुंडल रसाल कानन छवि देहीं,
तिन मैं झुमका झमकि लूटि चख की गति लेहीं;
मुख-छवि कोमल कंज-सरिस मंजुल सुखकारी,
आभा-पूरन चन्द मनी तिहुँ पुर उजियारी।

आनन सों मनु झरैं मुकुत बोलत जेहि बारी,
लगै वसीकर-मन्त्र-सरिस तव बात पियारी;
नाक-बीच लघु नथ बिसाल सोभा उपजावै,
लहि मनु कुंडल कीर चाव सों भरो झुलावै।

तामैं मुकुता झूलि-झूलि अधरन कँह परसैं,
निज समान गुनि दन्त मनो देखन कहँ तरसैं।
कुंजर सी तव चाल समद झूमत सुख-दायक,
कंचन-लतिका-सरिस गात मन-जीतन लायक।

अधम-उधारन को धारो है सुबानि कत,
अधम-उधारन सों जो पै सकुचात हौ,
दीन-बन्धु काहे ते कहावत जहान में जु,
दीन दुखहारन में धरे ढील गात हौ;

करुना-निधान की उपाधि तजि देहु जु पै,
साफ इनसाफ करिबे को ललचात हौ,
पतितन-पावन को छाँड़ौ नाम जो पै मो से,
पतित पुनीत करिबे को न सिहात हौ।

होते जो न मो से कूर-पतित जहान में तो,
कैसे तुम पतित-पुनीत कहवावते?
करते न ढेर हम पातक-पहार, तौ न,
करुना-निधान को बिरदु तुम पावते;

दोषन के जूहन को धारि, पछिताय जो न,
हा-हा! करि हम दीनताई दरसावते,
कढ़ते तौ कोमल तुम्हारे गुन-गुन कैसे,
कैसे पुनि भगत सुजस तुव गावते?

रावरी कृपा की कोर लहि कै कछूक गहि,
गरब गँभीर पाप-पुंजन कमायौं मैं,
देशन को चूर करि, सतगुन दूर करि,
कूर बनि केवल, कुगुन अपनायौं मैं,

सब को समान सतकार कै उदार ह्वै कै,
जग-उपकार मैं क्यौं न कन लायौं मैं,
आरत ह्वै भारत पुकारत है नाथ! अब,
पाहि-पाहि! रावरी सरन तकि आयौं मैं।

सुन्दरता-वर्णन

आई कहाँ सों इहाँ मृगलोचनि, रूप धरे रति सों अति नीको,
रेसम-तार से वार बने, परभा-मुख पेखि परे ससि फीको;
बाँधन-हेत मृगा-मन के, तव बीन समान बजे बरबानी,
कै यह मोहन-मन्त्र किधौं गुन-खानि सुधा-बसुधा सुखदानी।

चन्द छटा सी हँसी बिलसी, निरखे मन जोगिन के हुलसावै,
त्यों रतनारे बिलोचन हैं जिन सों मद-धार सी धावति आवै;
चारु, कृशोदर पै त्रिवली छवि-भार सों और वली छवि छाजे,
बेस बसीकर-जन्त्र समान, महा सुकुमार सरीर बिराजे।

अन्धकार सम चारु, स्याम कच-रासि बिराजे,
लम्बित लट अवलोकि धीर तपसिन को भाजे;
चंचल नागिनि सरिस रुचिर बेनी कटि परसै,
सीस-फूल कच-रासि-बीच मंगल-सम दरसै;

मकराकृत कुंडल रसाल कानन छवि देहीं,
तिन मैं झुमका झमकि लूटि चख की गति लेहीं;
मुख-छवि कोमल कंज-सरिस मंजुल सुखकारी,
आभा-पूरन चन्द मनौ तिहुँ पुर उजियारी।

आनन सों मनु झरैं मुकुत बोलत जेहि बारी,
लगै बसीकर-मन्त्र-सरिस तव बात पियारी;
नाक-बीच लघु नथ बिसाल सोभा उपजावै,
लहि मनु कुंडल कीर चाव सों भरो झुलावै।

तामैं मुकुता झूलि-झूलि अधरन कँह परसैं,
निज समान गुनि दन्त मनो देखन कहँ तरसैं।
कुंजर सी तव चाल समद झूमत सुख-दायक,
कंचन-लतिका-सरिस गात मन-जीतन लायक।

वीर नायक वर्णन

तन संगर में अरि-जालन आनन माँहिं वसी ललकार है,
नन के हित दच्छिन बाहु बनी सुखदा सुर-पादप-डार है;
सरजा सिव आजु सही वसुधा-तल पै जस को अवतार है,
भुवपाल तुही जग मे भुज-दंडन पै तव भूतल-भार है।

प्रबल प्रचंड मारतंड सों तपाग्र नीको,
छायो तेज दसहू दिसान अनियारो है,
बैरिन के मद परिपूरन को चूरन कै,
सूरन को निज सरनागत निहारो है,

दीनन को देत अभै-दान नित जाही विधि,
गब्बरन त्यों ही बिनु मान करि डारो है,
सिवाजी खुमान हों बखान केहि भाँति करों,
बढ़ि सब ही ते लखो सुजस तिहारो है।

सेना वर्णन

धावत अडोल दल-बल सों मही-तल पै,
हो-हल अरिन्दन के हालत हहरि हैं,
उछलत चलत तुरंगन के आवैं रिपु,
जूथन को मानो नाग-दंसित लहरि हैं;

पग मग धरत धरा को धसकत दिग-
सिन्धुर समान वर कुंजर चलत हैं,
धारि कर सांकरि लगाम उलकारि मद,
गारि जे पछारि मृग-राजन मलत हैं।

अरजत दीन, लरजत कुंडलीस,
गरजत दिग-सिन्धुर चलत जब दीह दल,
कहलत कूरम, दिगीस दहलंत,
दिगदन्ति टहलत, पारि जगत मैं खलभल ;

दान दुज पावत, सुनावत असीस, जस,
गावत करत नहिं चारन चतुर कल,
पूरन प्रताप भूप दस दिसि चूरत औ,
वैरिन के तूरन करेजन धरानि-तल।

धावत प्रवल बल धारि कै सकल दल,
तासु परिपूरन प्रताप जग छायो है,
उदित विलोकि ताहि कोटि मारतंड सम,
देखि निज हीनता दिवाकर लजायो है ;

मानि जग-हित बिनु काज निज तेज ताहि,
गोपन विचारि दिनकर मन लायो है,
ताही सों प्रचंड धूरि-धार की सहाय लहि,
जूगनू-समान रूप आपनो बनायो है।

मीतन सों भाखत अपर वीर आजु तव,
असि को प्रचंड रूप औरई लखात है,
देखि कै प्रताप जासु जगत उजासकर,
खासकर भासकर हू लौं दबि जात है ;

तेग को किरन-गन चलत गगन-दिसि
वैरिन को भाल जिन्हैं देखि बिललात है,
साथ तिनहीं के अरि प्रानन को जाल अघ,
हीं सों सूर-मंडल को बेधत लखात है।

विनु माँगेहु जे बकसि देत गज बाजि हजारन,
लखि दीनन जे करैं सदा बड़ि विपति-विदारन ;
समर-बीच गिरि-सरिस करिन के कुम्भ निपातैं,
अवगाहैं तिमि रास माहिं रस की सब घातैं ;

अब तिन भुज-दंडन को प्रकट, प्रबल पराक्रम कीजिये,
महि-राज-मंडली मैं महा, राज-प्रवर जस लीजिये।

तव प्रताप सों नाथु आजु चंडी बल पाई,
धरि कर मैं करवाल काल-सम ओज बढ़ाई,
कीट-सरिस रिपु-सैन सकल संगर मैं काटैं,
खाईं रन-थल माँहि वैरि-लोथिन सों पाटैं ;

जबलौं सोनित को विन्दु इक, तन मैं संचालन करिहि,
तबलौं नहिं जोधन को चरन रन, मँहि सो छिनहू टरिहि।

अंग-अंग कटि परैं तऊ उतसाह न छंडैं ;
मरत-मरत दुइ-चार सत्रु हनि कै जस मंडैं ;
जनम-भूमि के सुत सपूत रहिबो अभिलाखैं,
स्वामी-लोन की लाज प्रान रहिबो लौं राखैं ;

थिर अंगद सो जोधा-चरन, को डिगाय रन सों सकै,
जब लौं जीवत नर एकहू, को भारत की दिसि तकै ?

मातु कै समीप फेरि चाव सों महा पगो,
माँगिवे विदा भुवाल जाय पाँय सों लगो;
देखि कै सपूत को हुलास जंग सों महा,
जानि कै सुवीर नाहिं मातु मोद को लहा;
राज देउ, पाट देउ, मान देति हैं विसाल;
अन्न-धन देउ त्यों करै सदा महा निहाल।
माहुँ सों विसेस तौन जन्म-भूमि को विचारु;
जाहि पालिवे सपूत तू सदा हुस्यार धारु।

तो देखि साज रन-हेत उछाह पूरो;
भो आजु मोहि परिपूरन तोष रूरो;
नौ मास तोहिं जब पेट मँझार धार्‌यो;
तौ बीर होन-हित जुक्ति सबै विचार्‌यो।

तेरो पिता प्रबल जुद्धन को पधार्‌यो;
ताके चरित्र-चित मैं तव हेत धार्‌यो;
बाँची अनेक बर-बीरन की कहानी;
पूजीं सदा सकल देवि प्रभाव सानी।

सुत को मस्तक चूमि चाव सों,
मातु बिदा यहि भाँति दियो;
जाहु करहु संचित जस रन मैं,
जिमि अब लौं पुरिखान कियो।

यहि प्रकार लहि बिदा मातु सों भूप महा मन-मोद भर्‌यो,
चल्यो समर-हित इमि आनन्दित, मनौ पाँय रिपु आप पर्‌यो;

धन्य धन्य हे बिसद बीर जोधा बलसाली,
तव भुज-बल सों चढ़ी सदा भारत-मुख-लाली;
जब लौं ये भुज-दंड चंड फरकैं अति घोरा,
चपला सी करवाल लाल चमकैं चहुँ ओरा;
तब लौं हम काढ़ैं तासु चख, आँखि जौन सनमुख करै,
को भूप भृकुटि लखि भंग नहिं, थरथराय भू-तल परै?

रिपु-गन को लखि ढीठ मान-मरदन-हित भारी,
करि संगर-हित सरंजाम-सह आजु तयारी;
जब लौं रवि-कर करैं कालि उदयाचल-चुम्बन,
तासु प्रथम सब चलौ सुजस-लूटन जोधा-गन;
[illegible] को,
[illegible] की करौ, सिथिल बानि अभिमान की।

परे रुंडन पै रुंड औ वितुंड बिनु सुंड कटे,
बाजि, रथ, कवच अमित दरसात;
भूषननि-जटित भुजा हैं रन-खेत-परीं,
अंग-भंग सुभट अनेकन लखात;
चढ़ी भौहैं ज्यों कमानौं. परे मुंड बेसुमार,
सूर घायल अधर कहूँ दाँतन चबात;
बही सोनित की धार, भरी हाड़-मेद-मास,
मनौ रौद्र पै विभत्स को दखल भयो जात।

युद्ध के दाँव-पेच

प्रचंड तोप-माल सों कढ़ी महान धूम-धार,
दसौ दिसा अकास मैं सुमेघ सी मढ़ी अपार;
कढ़ी हुती रिसाग्नि सों विलोकि तौन घोर भाव,
न भूमि सीचिबे विचार मैं धर्‌यो कछूक चाव।

बहु गोलन बरसाय पुहुमि पर आपद छायो,
पितु को दारुन रूप मनो जग को दरसायो;
तोपन सों कढ़ि चले लाल गोला जब भारे,
चमकैं तब चंचला मनो घन में पनधारी;

सौदामिनि-सम लाल लाल गोला पुनि धाईं,
देहिं समर-थल माहिं अमित रिपु-गन झरसाईं;
गोलन सों अँग-अँग सुभट गज, बाजिन केरे,
फटि-फटि उड़ि-उड़ि व्योम परैं महि पै चहुँ फेरे;

बहु काल चलि प्रति सैन के जुग भाग चारु बनाय,
लखि दूरि गोली-मार लौं अरि जूह-हित ललचाय;
बहु मोरचे रचि जंग-हेत उमंग धारि महान,
भट लगे बरसन बम्ब से विकराल गोली बान;

जब दगैं वर बन्दूक गाजत मेघ सी तिहिं ठौर,
तब निकसि पावक-ज्वाल तिन सों चलै अरि की ओर;
मनु धारि रूप कराल दारुन वीर-गन को कोप,
रिपु ओर धावत तेज तिन को गुनत करिबे लोप।

अगयारि आयुध-माल सों कढ़ि धूम-धार महान,
घनघोर सी तहँ घूमि लीन्हो छाय सब असमान;
तेहि माहिं पावक-रेख भीषम लसैं थिर यहि भाँति,
मनु मेघ सों थिर कढ़ीं नूतन चंचला की पाँति;

जल-धार ठौर कराल गोली-बान-वर्षा पीन,
जुरि करत हैं ते मेघ अरि पै रीति धारि नवीन;
मनु मेघनाद-समान रन मैं धूम की धरि ओट,
वर वीर भूपति देस के हित करैं अरि पै चोट।

ह्वै रन मैं उनमत्त सूर-गन तन को घाव न जानैं,
जननी-जनम-भूमि थाहन-हित मरिबोई भल मानैं;
धावत रिपु-दल ओर वीर बहु लहि गोली की चोटैं,
ह्वै असमर्थ समर त्यागन के दुख सों सिर धुनि लोटैं।

परि अचूक असि कहूँ कन्ध पर वीरन केरे,
काटि कवच सह गात करैं तन के जुग बेरे;
करि पैंतरे सवेग कहूँ अरि-वार बचाई,
घायल सिंह-समान वीर वाहैं असि धाई;

सनि सोनित सौं लाल-लाल असि-रूप लखानो,
करि मधु-पान कराल कालिका नाचति मानो,
जिमि-जिमि सोनित पियैं तमकि रन में तरवारी,
तिम-तिम तिनकी प्रबल प्यास जागति जनु भारी;

एक ओर तल्लीन देखि अरि-दल वलवाना,
दूजी दिसि सों धाय तुरँग-सेना सविधाना;
प्रवल वेग धरि करै अचानक अरि पै वारा,
सावन-झरि सी वरसि कठिन अस्त्रन की धारा।

संग्राम भूरि यहि भाँति प्रचंड माच्यो,
मानो सरूप धरि के रन काल नाच्यो;
पेल्यो अरीन रन मैं जव जोम धारे,
देखे मिले दल दुवौ सहसा हँकारे।

धायो सवेग दल दन्तिन को कराला,
पूरे दिगन्त रव घंटन को विसाला;
ते भीमकाय रज कज्जल-सैल मानो,
धाये पयोद रन को अथवा प्रमानो।

धारे सजोम कर साँकरि को घुमावैं,
कै सिंह-नाद अरि पै उनमत्त धावैं;
देखैं जहाँ प्रवल जूथप-जूथ ठाढ़े,
पैठैं तहाँ करि प्रचंड प्रभाव वाढ़े।

गज देखि आवत शत्रु को कहुँ पीलवान रिसाय,
मद-मत्त कुंजर चाव सों लै चलैं ओज वढ़ाय;
सहि भीम अंकुस कोप करि गज सुंड-पुच्छ उठाय,
उनमत्त धावहिं मनहु सैल सपच्छ दीरघु काय।

मिश्र-वन्धुओं के ग्रन्थ

काव्य—पद्य-पुष्पांजलि—(लव-कुश-चरित्र, भारत-विनयादि)।
नाटक—नेत्रोन्मीलन, पूर्वभारत, उत्तरभारत, शिवाजी, ईशान-वर्मन, प्राचीन मैं नवीन (रामचन्द्र नाटक), [illegible] ([illegible])।

काव्य-शास्त्र—साहित्य-पारिजात।
उपन्यास—वीरमणि।
आलोचना—हिंदी-नवरत्न, हिंदी-साहित्य का इतिहास, (दोनों के संक्षिप्त-संस्करण) मिश्रबंधु-विनोद (४ भाग)।
टीका और सम्पादित—भूषण-ग्रन्थावली, देवसुधा, बिहारी-सुधा, कवि-कुल-कंठाभरण, सूर-सुधा।

डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी

त्रिपाठी जी का जन्म संवत् १९४६ में मुजफ्फरनगर में पंडित मुक्ताप्रसाद त्रिपाठी के घर में हुआ। आपके पूर्वजों की जन्म-भूमि कानपुर ज़िले के सैंत्रसू ग्राम में है। बाल्य-काल ही से आपने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया था।
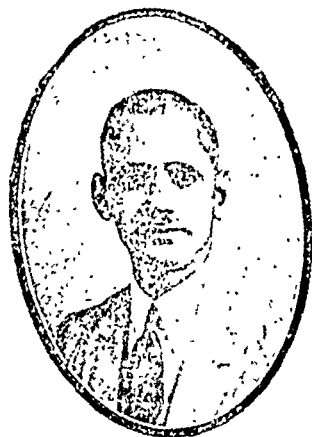
आपने प्रतापगढ़ तथा सुल्तान-पुर के स्कूलों में पढ़ कर सेन्ट्रल हिंदू कालेज से बी० ए० पास किया। फिर गवर्नमेन्ट कालेज, लाहौर से इतिहास का विषय लेकर आपने एम० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की और संवत् १९७१ में लखनऊ के क्रिश्चियन कालेज में प्रोफेसर नियुक्त हुए। वहाँ से प्रयाग विश्व-विद्यालय में संवत् १९७३ वि० में इतिहास के अध्यापक होकर आ गये।

संवत् १९८१ में आप इंग्लैंड चले गये और वहाँ से १९८३ में डी एस-सी. की प्रशस्त उपाधि प्राप्त की। आपकी गम्भीर गवेषणा और

कोऊ करै केतो पुरुषारथ अकारथ है,
जौलौं रत-स्वारथ है, विरत दुखारी है;
प्रेम हरियारी जित, छेम की बयारी नित,
नेम की उजारी चल नचत मुरारी है।

खेलिबो तिहारो कर्म, खेलिबो हमारो धर्म,
तुम गतिधारे, हम हूँ तौ गतिवारी हैं;
अंग ना कहावौ तुम, अंगना कहावैं हम,
तुम पतिवारे, हम हूँ तो पतिवारी हैं;
रूप-रस-वारे तुम, रूपरसवारी हम;
मोह-मद-वारे, हम मोह-मद-मारी हैं;
प्रेम-मतवारे तुम, प्रेम-मतवारी, हम,
काम रति वारे, हम काम-रतिवारी हैं।

कैसी किन गारी चिनगारी हरि होरी माँहिं,
नैकहू सिराति नाहिं बाढ़ति नितै-नितै;
जानत उपाय कोर, जानत न पाय खोर,
जाति पिचकारी है हमारी हू रितै-रितै!
आप हू तौ भक्ति-रस-रंग-पिचकारी डारि
रक्त पिचकारी धारि धावत जितै-तितै;
हम तौ तिहारी बनवारी रीति जानैं नाहिं,
रहहिं प्रतीति के सहारे ही चितै-चितै।

जौलौं बंक भृकुटी, [illegible]
तौलौं रुख-विरि[illegible] ना;
जौलौं प्रेम-पूतरी [illegible]
तौलौं [illegible]

जौपै ब्रज-बावरी भरैगी भाव भाँवरी तौ,
रावरीयौ कामरी बचाये हू बचैगी ना।
जोपै रास-रौन कहूँ राधा अवराधा तजी,
दूजी रास-मंडली रचाये हू रचैगी ना।

बंचक! तिहारे फर-फन्द छर-छन्दन कौ,
सोचिबे-सुनाइबे को मन है. न बानी है;
बादर सौं रोइ-रोइ पाटि दीने सागर हैं,
छीन-हीन-दीन तऊ मीनन मैं पानी है;
कहाँ लौं सुनावैं हम, कहाँ लौं सुनौगे तुम,
यह अनुराग औ विराग की कहानी है;
मोह-छोह-खानी, अनुरक्त-रक्त-सानी, ज्ञान-,
मान विलगानी या दुरन्त की निसानी है।

एक चूक ही की हूक ही कौ टूक-टूक करै,
लूक सौं लगै कछूक यौं कि उबरैंगे ना;
दरस तिहारे के सहारे जीय धारे रहैं,
धारे रहैं धीर, पीर धारे हू धरैंगे ना;
तौहू मुसकात, ना सकात उसकात पीर,
सोचत न बीर ये तौ तीर लौं तरैंगे ना;
एक अभिलाष तौ सँभारैं ना सँभारी जात,
लाख अभिलाष कहू क्यौंहूँ सँभारैंगे ना।

जीवन कौ तार जो पै ऐसोई रहैगो तौ पै,
मेरो करतार तार एकहू रहैगो ना;
बेगि ही बढ़ावौ हाथ, अबहूँ गहौगे, न तौ,
फेरि का बढ़ाये, जब हाथ ही गहैगो ना;

आनि-कानि-पासन सौं साँसै औ सँभारै सबै,
तौ हू मन-मन्दर कौ सहठ मथावै हैं;
सुरन को मत्त, असुरन कौ अमत्त करैं,
मोहिनी को मोहि सिव बिष सौं रचावै हैं।

जाकी गुन-गरिमा मही मैं, ही मैं राजि रही,
साजि रही जाके हित प्रकृति सुसारी है;
जाके ज्ञान-जोग की चहूंघा चरचा है चारु,
जोगिन मैं अरचा है ऐसी छवि-न्यारी है;
वाको रूप देखिवे को, गुन अवरेखिवे को,
हौं हू गई जापै ब्रज-रानी बलिहारी है;
प्रेम-मूठि मारी, जौ लौं हिय कौ सँभार करौं,
तौ लौं तकि नैननि अबीर-मूठि मारी है।

गेरत सुरंगी पट आवै बहुरंगी रवि,
हेम - कर - कंज नख-छत कै जगावै है;
पूरषन के ऊषन प्रकास कौ परस पाइ,
सारे लोक-लोकन मैं प्रान फिरि आवै है;
तपि-तपि ज्यौं ही तपी साँसनि-उसाँसन सौं,
सारी वसुधा मैं तृपा-तोम उपजावै है;
सूठो से अकास मैं बिकास करै जीवन को,
मेह-बिन्दु-व्याज नेह-बिन्दु बरसावै है।

ऊँची गिरि-चोटिन सों छूटि चली जा दिन सौं,
तादिन सौं चंचल चलाचल लगी रहै;
सीस धुनि पाहन पै, काँकरीली राहन पै,
छाती छिली जाति कुंज-कानन ठगी रहै;

व्याकुल ह्वै धावै नित, नीची गति पावै तापै,
नारन-पनारन की कीचि सौं पगी रहै;
पावै छिन एक हू बिराम न अराम जौलौं,
त्यागि नाम-रूप ह्वै न सिन्धु की सगी रहै।

जादिन सौं निरखी छवि रावरी, बावरी बीथिन मैं बिहर्यो करै,
पीर लिये, हिय धीर किये, मुसक्याति, पै नैननि नीर भर्यो करै;
प्रान कौ मोह न मोहन-हेतु जियावति जीय उसाँस भर्यो करै,
नेह-बती लौं सनेह सती लौं, उजास करै तऊ आपु जर्यो करै।

नैन बुझाइ-बुझाइ थके, अनुराग की आगि बरोई करै,
कोटि निरास-कुठार चलै, तऊ प्रेम की बेलि फरोई करै;
नैननि नीर बह्यो करै पै, उर-अन्तर नेह भरोई करै,
मौन रहै हिय हारि तऊ, रसना तव नाम ररोई करै।

सोवत औ सपने की कहा, जब जागत ही मति जाति हिरानी,
कासौं कहैं अरु कैसे कहैं, यह आपनी बात, न बात बिरानी;
बूड़ी रहै नित नीरधि मैं, बड़वागि बियोग की पै न सिरानी,
लावै न साँस-उसाँस हू पै, मन की लहरैं लहरैं न थिरानी।

ऊधौ कहा तुम सौं कहनो तुम तौ इन बातन कौ नहिं जानौ,
आपु ही आपनी बात कहौ, तुम आप न आपने को पहिचानौ;
प्रेमिन के मन मैं, तन मैं, कन आपनपौ कौ न एक थिरानौ,
नारिन की गति की, मति की, न अनारिन के मत मैं रहि मानौ।

रावरो रूप का सिन्धु अपार, सो नैन की नाव सौं पार तरैं क्यौं?
कोमल है बरुनी पतवार, सनेह कौ भार सँभार करैं क्यौं?
तापै अनेक हैं छेद छये, तौ निरास कौ नीर न तामैं भरैं क्यौं?
बूड़ि है पै यह जानत हैं, तऊ आइ परे अब कैसे टरैं क्यौं?

—मुक्तक-मंजूषा से

डाक्टर त्रिपाठी के ग्रन्थ

काव्य-ग्रन्थ—मुक्तक मंजूषा (अप्रकाशित)

श्री दुलारेलाल भार्गव

श्री दुलारेलाल जी का जन्म माघ शुक्ल ५, संवत् १६५२ में लखनऊ मे हुआ। आपकी शिक्षा उर्दू से प्रारम्भ हुई; परन्तु आपने अपनी माताजी के प्रभाव से हिन्दी सीखी। इन्टरमीडियेट पास करने के बाद आपने नवलकिशोर प्रेस मे काम करना शुरू कर दिया। आप न केवल सरस्वती के काव्यागार को ही सुशोभित करते हैं, वरन् कहना चाहिए, आपके द्वारा, उसके जरा-जीर्ण-व्रज काव्य-कलेवर मे एक सुन्दर दोहावली की रचना से नव-जीवन के संचार का भी प्रयत्न किया गया है। इस ग्रन्थ पर आपको 'देव-पुरस्कार' भी प्राप्त हुआ है।

दुलारेलालजी ने 'माधुरी' और 'सुधा' नाम की दो प्रख्यात पत्रिकाओं को जन्म देकर निखारा और निसारा है। विशेषांकों के निकालने की परिपाटी को प्रचलित करने का श्रेय सम्भवतः आपको ही दिया जा सकता है।

व्रजभाषा और व्रजभाषा काव्य के आप अनन्य प्रेमी, नेमी तथा हितैषी हैं। आप में काव्य-कला कौशल की मर्मज्ञता सराहनीय है।

निवेदन

श्री राधा बाधा-हरनि, नेह अगाधा साथ,
निहचल नैन-निकुंज में, नचौ निरन्तर नाथ!
गुंज-हार गर, गुंज कर, वंसी कर हरि लेहु;
उर-निकुंज गुंजाय, घर-रोर-पुंज हरि लेहु।

अनु-अनु आपु प्रकास करि, करत अँधेरैं बास ;
उर-निकुंज तम-पुंज मम, रमिये रमा - निवास।
नीरस हिय तम-कूप मम, दीप तिमिर बिनसाय ;
रस-प्रकास भारति भरौ, प्यासौ मन छकि जाय।

सो०—मम तन तव रज-राज, तव तन मम रज-रज रमत ;
करि विधि-हरि हर-काज, सतत सृजहु, पालहु, हरहु।

दोहावली सार

सो०—गुरु-जन-लाज-लगाम, सखि, सिख-साँटो हू निदरि,
पेखत प्रिय-मुख-ठाम, टरत न टारे दृग-तुरग।

तेह-मेह मुख-नभ छयौ, चढ़यौ भौंह-सुर-चाप ;
आँसू बूँद गिरे, दुरयौ, हास-हंस चुपचाप।

दमकति दरपन-दरप दरि, दीप-सिखा-दुति देह ;
वह दृढ़, इक दिसि दिपत, यह, मृदु-दस दिसनि सनेह।
हिममय परबत पर परति, दिनकर-प्रभा प्रभात ;
प्रकृति-परी के उर परयौ, हेम-हार लहरात।
ऊँच-जनम जन जे हरैं, नित-नमि-नमि पर-पीर ;
गिरि-वर ते ढरि-ढरि धरनि, सींचर ज्यों नद-नीर।
सन्तत सहज सुभाव सों, सुजन सबै सनमानि,
सुधा-सरस सींचत स्रवन, सनी सनेह सुबानि॥
भाव-भाप भरि, कलपना, कर मन-उदधि पसारि ;
कवि-रवि मुख-घन तें, जगहिं, गव रस देय सँवारि।
इड़ा-गंग, पिंगला-जमुन सुखमन-सरसुति-संग,
मिलत उठति बहु अरथमय, अनुपम सबद-तरंग।
वषय-बात मन-पोत कों, भव-नद देति बहाइ ;
पकरु नाम-पतवार दृढ़, तौ लगिहै तट आइ।

तचत बिरह-रबि उर-उदधि, उठत सघन दुख-मेह;
नयन-गगन उमड़त घुमड़ि, बरसत सलिल अछेह।
नेह नीर भरि-भरि नयन, उर पर ढरि-ढरि जात;
टूटि-टूटि तारक गगन, गिरि पर गिरि-गिरि जात।

लखि अनेक सुन्दर सुमन, मन न नेक पतियाइ;
अमल कमल ही पै मधुप, फिरि-फिरि फिरि मँड़राइ।
जग-नद में तेरी परी, देह-नाव मँझधार;
मन-मलाह जो बस करै, निहचै उतरै पार।

माया-नींद भुलाइकैं, जीवन-सपन-सिहाइ,
आतम-बोध बिहाइ, तैं, मैं-तैं ही बरराइ।
तन-उपबन सहिहै कहा, बिछुरन-झिंझा-बात;
उड़यौ जात उर-तरु जबै, चलिबे ही की बात।

उर-धरकनि-धुनि माँहि सुनि, पिय-पग-प्रतिधुनि कान;
नस-नस तें नैननि उमहि, आये उतसुक प्रान।
हिय उलही पिय-आगमन, बिलखी दुलही देखि;
सुख-नभ-दुख-धर-बीच छन, मन-त्रिसंकु-गति लेखि।

होत निरगुनी हू गुनी, बसे गुनी के पास;
करत लुएँ खस-सलिलमय, सीतल, सुखद, सुबास।
गई रात, साथी चले, भई दीप-दुति मन्द;
जोवन-मदिरा पी चुक्यौ, अजहुँ चेत मतिमन्द।

उत उगलत ज्वालामुखी, जब दुरवचननि-आग,
उठत हियैं भू-कम्प इत, ढहत सुदृढ़ गढ़-राग।
चस न हमारौ वस करहु, वस न लेहु प्रिय लाज;
चसन देहु व्रज मैं हमैं, वसन देहु व्रजराज।

पट, मुरली, माला, मुकट, धरि कटि, कर, उर, भाल;
मन्द-मन्द हँसि वसि हिये, नन्द-दुलारे-लाल।

हौं सखि सीसी आतसी, कहति साँच-ही-साँच ;
बिरह-आँच खाई इती, तऊ न आई आँच !

बिन बिवेक यौं मन भयौ, ज्यौं बिन लंगर पोत ;
भ्रमत फिरत भव-सिन्धु में, छिन न कहूँ थिर होत।

होयँ सयान अयान हू, जुरि गुनवान समीप ;
जगमग एक प्रदीप सों, जगत अनेक प्रदीप।

दरसनीय सुनि देस वह, जँह दुति-ही-दुति होइ,
हौं बौरौ हेरन गयौ, बैठ्यौ निज दुति खोइ।

एक जोति जग जगमगै, जीव-जीव के जीय ;
बिजुरी-बिजुरी घर निकसि, ज्यों जारति पुर-दीय।

स्याम-सुरँग-रँग-करन-कर, रग-रग रँगत उदोत ;
जगमग जग-मग जगमगत, डग डगमग नहिं होत।

पैरत-पैरत हौं थक्यौ, भव-सागर के बीच ;
कबै पाइहौं देस वह, जहाँ न जनम, न मीच।

बार बिल्यौ लखि, बार झुकि, बार बिरह के बार ;
बार-बार सोचति-कितै, कीन्हों बार लबार ?

गुंज-निकेतन-गुंज तें, मंजुल वंजुल-कुंज,
बिहरै कुंज-बिहारि तँह, प्रिय प्रवीन रस-पुंज ;

सतसंगति लघु-बंस हू, हरि अवगुन, गुन देति ;
केहि न कान्ह-अधरन-धरी, वंसी वस करि लेति ?

तू हेरत इत-उत फिरत, वह घट रह्यौ समाय ;
आपौ खोवै आपनों, मिलै आप ही आय।

चंचल अंचल छलछलति, जिमि मुख-छबि अवदात ;
सित घन छनि-छनि झलमलति, तिमि दिन-मनि-दुति प्रात।

राधा-वर अधरनि धरी, बाँसुरिया बौराइ,
प्रति पल पियत पियूष, पै, विषम विषहिं बरसाइ।

जोबन-मकतब तौ अजब, करतब करत लखाय ;
पढ़े प्रेम - पोथी सुमति, पै मति मारी जाय।
बसि ऊँचे कुल यों सुमन, मन इतरैए नाहिं ;
यह विकास, दिन द्वैक कौ, मिलिहै माटी माहिं।
कंचन होत खरो - खरो, लहै आँच कौ संग ;
सुजनन पै त्यौं साँच तैं, चढ़त चौगुनौ रङ्ग।
चहूँ पास हेरत कहा, करि-करि जाय-प्रयास ?
जिय जाके साँची लगन, पिय वाके ही पास!
नन्द-नन्द सुख-कन्द कौ, मन्द हँसत मुख-चन्द ;
नसत दन्द-छल-छन्द-तम, जगत जगत आनन्द।

(दुलारे दोहावली से)

श्री दुलारेलाल भार्गव के ग्रन्थ

काव्य-ग्रन्थ—दुलारे दोहावली।

—:o:—

डाक्टर रामशंकर शुक्ल 'रसाल'

'रसाल' जी का जन्म चैत्र कृष्ण २ बुधवार, संवत् १६५५ में मऊ, ज़िला बाँदा में हुआ। आपके पिता पंडित कुँजबिहारीलाल जी बाँदे में हेडमास्टर थे।

'रसाल' जी ने संवत् १६८२ में प्रयाग-विश्व-विद्यालय से बी० ए० और १६८४ में एम० ए० पास किया। उसी वर्ष आप कान्य-कुब्ज कालेज, लखनऊ में तर्क-शास्त्र और हिन्दी के प्रोफेसर नियुक्त हो गये; किन्तु वहाँ से फिर प्रयाग-विश्वविद्यालय में अन्वेषण-कार्य के लिए आ गये। अब आप इसी विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में अध्यापक हैं।
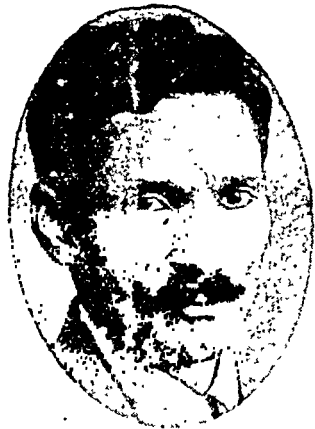
आपने काव्य-शास्त्र के विषय में एक गम्भीर गवेषणा-पूर्ण मौलिक तथा विवेचनात्मक ग्रन्थ लिखा, जिसके लिए आपको विश्व-विद्यालय की ओर से संवत् १६६५ में 'डा० ऑव लिट्रेचर' की उपाधि से सन्मानित किया गया। आप ही इस विश्व-विद्यालय के सर्व प्रथम हिन्दी के आचार्य (डाक्टर) हैं।

'रसाल' जी ब्रज-भाषा-साहित्य के मर्मज्ञ विशेषज्ञ और साथ ही कुशल कवि भी हैं। आपका काव्य कलाकौशल युक्त, गूढ़ तथा गम्भीर रहता है। वाक्य-विन्यास भाव-प्रभावपूर्ण संयत और वैचित्र्यमय होता है। आपके शब्द-संगुफन में वर्णमैत्री और शब्द-मैत्री का अच्छा रूप

आता है। आपकी रचनाओं में वाग्वैचित्र्य के साथ चमत्कार की प्रधानता झलकती है।

'रसाल' जी सुयोग्य लेखक तथा मननशील आलोचक भी हैं।

—सुखदेव विहारी मिश्र

उद्धव-गोपी-संवाद

ऊधौ जू कहौ तौ कैसो जोग के कुजोग भयौ,
रोग भयौ, कैसे भय ऐसे आप जातैं हैं?
अलख लखात, ना लखात लख क्यौं हूँ तुम्हैं,
हौ तौ गुनवारे तऊ बेगुन की बातैं हैं;
दीखै आतमाकुल प्रकास आतमाकुल हूँ,
जगत के द्यौस, सो 'रसाल' तुम्हें रातैं हैं;
बातै हैं तिहारी ये अनोखी भंग-रंग वारी,
रंग-भंग वारी के तिहारी घनी घातैं हैं।

मग न दिखात सूधौ, मगन दिखात ऊधौ,
मगन दिखात कीन्हें आपु ही मैं आपु कौ;
मानौ औ प्रमानौ और, जानौ-अनुमानौ और,
औरई बखानौ न ठिकानौ कछू आप कौ;
ब्रह्म सबै जो पै, तौ 'रसाल' भेद-भाव कैसो,
कैसें हमैं गोपी लखौ ऊधौ आपु आपु कौ?
बोधौ आपु स्याम कौ, प्रबोधौ किधौं गोपिन कौ,
ब्रह्म को प्रबोधौ कै प्रबोधौ आप आपु कौ?

कीजै तौ अजातरूप-बाद बाद जो पै इहाँ,
जातरूप-प्रेम कौ परेखिबौ बिचारौ है;
विषम वियोगानल-आँच मैं तपाइ हम,
याकौ तौ सुनारी-रीति-नीति सौं निखारौ है,
सारि मुख-बात जारि ब्रह्म-जोति हूँ 'रसाल',
तामैं ताइ-ताइ वृथा देखिबौ तिहारौ है;
देखौ कृष्ण-कठिन कसौटी लाइ ऊधौ! कसि
खोटो खरौ प्रेम हेम जो है जो हमारौ है।

ऊधव! बिचारैं हमैं आप कहा कामिनि ही,
हम जग-जामिनि की ज्योति ओप-ओपी हैं;
लख लख लीजिये हमारी प्रतिभा मैं आप,
अलख लखावैं कहा आतमा मैं लोपी हैं;
मानैं हैं महातमा महातमा तमा के आप,
आपनो महातम रहे क्यौं इत थोपी हैं;
ह्वै हैं आप जोई सोई आप अपने कौ रहैं,
गोपी रहैं गोपी, अपने कौं जब गोपी हैं।

स्याम पहिलैं तौ मोहि नीकैं मोहिनी कैं बल,
देह लै हमारी नीकैं नेह सौं सिभाई है;
उर लव लाइ त्यौं जगाइ अनुराग-आग,
आप दुरि दूर बड़ी बातनि बढ़ाई है;
सोई आग क्यौं हूँ नैन-नीर सौं न सीरी परै,
बात यौं बिचारि घात यौं 'रसाल' लाई है।
नेह-भरी पाती दै सँदेस-बात-बाती साथ,
ऊधौ! ब्रह्म-ज्योति हाथ रावरैं पठाई है।

करत कलोल लोल जीवन-तरंगिनी की,
उमँगी उमंगनि तरंगनि की माल मैं;
दै-दै चाव-चारौ यौं बिमोह्यौ कै न चारौ चल्यौ,
बहुत बिचारौ तऊ ऐबौ पर्यौ चाल मैं;
चेधि बेधि बंसी सौं 'रसाल' जिन्हें बंसीधर,
निज गुन खैंचि गये गेरि नेह – ताल में,
ऊधौ ! दुखी-दीनन कौ उन मन मीनन कौ,
आये फाँसिबे कौ तुम बेगुन के जाल मैं।

श्री हरि-सुदर्सन कौ सेइ-सेइ ऊधौ ! हमैं,
बान यौं परी कि बिना ताके दुख मानै हैं;
मोहन - वसीकर - प्रयोग चलि पावे वस;
मारन – उचाटन की भीति हू न आनै हैं;
दूजे अस्त्र-सस्त्रन की चरचा चलावैं कहा,
भव के त्रिसूल हू कौ फूल करि जानै हैं;
हम ब्रज वासिनी उदासिनी हैं ऐसे तब
हम पै वृथा ही ब्रह्म-अस्त्र आप तानै हैं।

दीखे जो सदाई दुखदाई हरि-द्रोहिन को,
प्रभु-पद मोहिन को सुखद सहारो है;
सन्तत ही श्रीहरि-सुदर्सन हमारैं ऐसो—
रहत सबेई ओर छायो छवि-वारो है;
पुनि सुख-कन्द ब्रज-चन्द को पियूष पाइ,
अमर 'रसाल' भयो जीवन हमारो है;
तब तुम बार-बार हम पै चलावत जो,
ऊधो ! ब्रह्म-अस्त्र वृथा हम पै तिहारो है।

उचित नहीं है मान हार तुम सौं जौ लेहिं,
अनुचित है जौ जयमाल पहिरावै हैं;
याही तैं विवाद-बकवाद करि वाद सबै,
रमत 'रसाल' जामैं तामैं जी रमावै हैं;
कहि-सुनि लीनो, कहिवौ औ सुनिवौ जौ हुतो,
सूधौ अब ऊधौ! यह कहि रहि जावै हैं;
आवैं तौ इहाँ वे भले आवैं कूबरीयै लै कै,
जो पै बिना कूबरी न क्यौंहू चलि पावै हैं।

रहत सदाई मुख-चन्द की जुन्हाई जुरी—
रंचक जहान को जहाँ न तम कारो है;
चलत चहूँघा बात सरस सहाई जहाँ,
देखियै तहाँई हरियारी-सुख प्यारो है;
सिंचित सनेह की सुधा सौं वसुधा है इहाँ,
ऊधव! कहूँ न रंच रज कौ पसारो है;
कैसे रावरो तौ दुखवारो गहैं ज्ञान-पन्थ,
ऐसो सुखवारो प्रेम-पन्थ जौ हमारो है।

सूझत सुझाए ना बुझाए मन बूझत है;
ऊधव! अरूझत है मोहन के मेले में;
बुधि बिसरानी त्यौं सिरानी सुधि ताकी सारी,
रंचउ थिरानी ना प्रपंच के दुहेले में;
ढरि अभिमान गयौ, सारो टरि मान गयौ,
गौरव-गुमान गयौ; गरि रज-रेले में;
सुचित नहीं है लखै उचित कहा धौं चित,
दुचित भयौ है चिदाचित के झमेले में।

मोहन-बिथा की कथा आपहू सुनावैं ऊधौ !
मोहन-बिथा की कथा हमहूँ सुनावैं हैं;
हम ब्रज-चन्द बिना हैं परी महा तम मैं,
आपने महातम मैं आप अकुलावैं हैं;
हम-तुम दोऊ एक, देखौ टुक टारि टेक,
अन्तर जौ नैक सो बिबेक कै बतावैं हैं;
हम गुन गावैं निगुनी ह्वै सुगुनी के नीके,
आप गुनी ह्वै कै निगुनी के गुन गावैं हैं।

जीवन असार को पसार अनुमानि-मानि,
मन मृग-बारि लौं बिचार को बिकार है;
लेके ब्रह्म-ज्ञान को महान जलयान जामैं,
पन्थ के निबाह कौ बिवेक पतवार है;
बेगुन कौ पाल ले बिसाल तानि तामैं तुम,
बड़ी-बड़ी बातनि कौ कीन्ह्यौ बिसतार है;
यह भव-सिन्धु है न जाकौ पैरि पायो पार,
ऊधौं ! यह प्रेम कौ अपार पारावार है।

अन्तर न ब्यापै कछू ऐसिये निरन्तर ही,
लगन रहे है एक, प्रीति-जोगवारे हैं;
देखिये 'रसाल' हाल है विचित्र प्रेमिन कौ,
बार है, न तिथि है, ए अतिथि बिचारे हैं;
ग्रह की कहा है औ उपग्रह कहा है जब,
निग्रह निवारे निज बिग्रह बिसारे हैं;
चन्द सौं दुचन्द है अमन्द मुख-चन्द एक,
प्रेमिन कें नभ में नक्षत्र हैं न तारे हैं।

एक लव लाये त्यौं जगाये बस ज्योति एक,
एकै आन तेजो-रूप और लहते नहीं;
राखै जौ सनेह-नेह करत उजेरो ताकौ,
रीतो नेह-पात्र लै कदापि रहते नहीं;
जगत-महा तम कौ टारि सुमहातम सौं,
दोप हू महातमा तमा कौ गहते नहीं;
दीपति है दीपति हमारी ही 'रसाल' हम,
प्रेम के प्रदीप बात तीखी सहते नहीं।

बीति गये दिन प्रेम के वै, सजनी अब वै रजनी हू सिरानी,
और कथा भई ऊधव जू! अब ह्वै गई औरै 'रसाल' कहानी;
नेह जर्यो बिरहानल मैं, परतीति रही अपनी न बिरानी,
बात रही न रह्यौ रस हूँ, तऊ मानस की लहरैं न थिरानी।

जात समै उन्हैं दीन्हें हुते, मन प्रेम-पगे करि पाहन छाती,
लैहैं लिवाइ उन्हें ये 'रसाल', बियोग-बिथा की कथा कहि ताती;
जात ही जात उहाँ उन दीन्हें, उन्हैं कुब्जा-कर मैं करि थाती,
आनि अँदेसो इहै, दै सँदेसौ, पठैबो परै अब ऊधव! पाती।

यह अवसर श्याम कथा कौ मिलो, सो गयो रसना की रलारली मैं,
कहिबे-सुनिबे की रही सो रही, इन बातन ही की बलाबली मैं;
मन-मीन मलीन मरे से परे, यहि ज्ञान की कोरी दलादली मैं,
मन-भावती हू कहि जाते कछू, अब ऊधव! ऐसी चलाचली मैं।

डाक्टर 'रसाल' के ग्रन्थ

१—इतिहास—१—हिन्दी साहित्य का इतिहास।

२—साहित्य प्रकाश।

३—साहित्य परिचय।

२—काव्य-शास्त्र—१—अलंकार पीयूष, २ भाग।

२—नाट्यनिर्णय।

३—अलंकार-कौमुदी।

३—आलोचना—१—आलोचनादर्श।

२—गद्य-काव्यालोक।

४—कोष—भाषा-शब्द-कोष।

५—निबन्ध—रचना-विकास।

६—काव्य—रसाल-मंजरी।

श्री हरदयालुसिंह

आपका जन्म वैशाख संवत् १९५० में महमदाबाद (ज़िला सीतापुर) में श्री मातादीन साह के घर में हुआ। आपने संवत् १९७० में क्राइस्ट-चर्च कालेज कानपुर से इन्टर क्लास तक पढ़ कर छोड़ दिया। आपने संस्कृत साहित्य का भी अच्छा अध्ययन किया। सम्वत् १९७३ से आप कानपुर में काम करते रहे और कई स्कूलों में अध्यापक भी रहे। आप व्रजभाषा में सुन्दर रचना करते हैं और आपका 'दैत्य-वंश' नामक काव्य 'देव पुरस्कार' से सम्मानित हुआ है।

श्री हरदयालुसिंह की भाषा सरल, प्रवाहपूर्ण और चलती हुई है। आपकी रचना में स्वाभाविकता तथा सबलता रहती है। वर्णन-शैली रुचिर-रोचक है। काव्य-विन्यास सुसंगठित और संयत तथा शब्द-संगठन भी भावपूर्ण तथा सरस है।

आपने संस्कृत के नाटकों तथा कई काव्यों के हिन्दी अनुवाद किये हैं जिनमें से कुछ प्रकाशित हो चुके हैं और कुछ अप्रकाशित हैं।

१—समुद्र-मन्थन

निरखि दैतन कौ विभव मन माहिं अति अनखाय कै,
मिलि अखिल देव-समूह इक षड्यंत्र रच्यौ बनाय कै;
सब गये बलि नृप की सभा महँ बैर भाव भुलाय कै,
अरु, करन लागे मुदित मन प्रस्ताव प्रीति दृढ़ाय कै।

ससि कह्यौ 'हम सब एक ही कुलमान्य की सन्तान हैं,
पै तुच्छ बातनि में परस्पर बैर करत महान हैं;
यहि विकट बन्धु बिरोध कौ नहिं कछु सुखद परिनाम है,
अब यहै दीसत सुर-असुर कुल के बिधाता वाम है।'

'अबलौं भयो सो भयौ वाको सोच जनु कछु कीजिये,
वैरानुबन्ध भुलाइ कै सहयोग को व्रत लीजिए;
जग विजय को सम भाग आपुस माहिं समुद बटाइहैं,
मत-भेद ह्वैहै जो कहूँ तेहि सान्त ह्वै निपटाइहैं।'

इमि भाषि ससि भो मौन. सुरगुरु समुद बलि दिसि देखि कै,
कह, 'सन्धि कीजे कलह तजि, गति समय की अवरेखिकै;
है संगठन सहयोग में ही, सक्ति यह गुनि लीजिए,
स्वीकार याते सक्को प्रस्ताव भूपति कीजिए।'

इति सुनत सुर गुरु के वचन, कछु सुक्र मृदु मुसकाय कै,
अस कहन लागे वैन दैत्य, नरेस कौ समुझाय कै;
'नृप सुनिय सत उपदेश, इनको और फेरि विचारिए,
फल अफल याको सोचि, पीछे कार्यक्रम निरधारिए।

सुनि सुक्र के वर बैन बलि नृप तिनहिं सीस नवाइके,
अरु कहन लाग्यो वचन निज गुरुवरहिं इमि समुझाइके।
'अभिलाप करि आये इतै, इनको निरास न कीजिए,
प्रस्ताव के अरधांस को स्वीकार ही करि लीजिए।'

इमि वैन सुनि बलिराज के जलराज गुरु रुख पाय कै,
यों कहन लागे दैत्यनृप सों वचन मृदु मुसकाय कै;
'है रहत कमला सिन्धु में अरु रत्न-रासि सबै यहीं,
पै मथि अगाध समुद्र को कोउ तेहि निकारि है नहीं।'

'यातै हमारी मानि अब नृप सिन्धु को मथि डारिए,
गहि बाँह तेहि पितु-गेह सौं सह रत्नरासि निकारिए;
पुनि लाभ कौ समभाग हम सब बाँटिहैं सुख पाय कै,
अरु मेलकै रहि हैं सदा कुल-कलह कौ बिसराय कै।'

सुनि बरुन कौ प्रस्ताव कछुक विचारि, मन्त्र दृढ़ाय कै,
स्वीकार कीन्ह्यौं ताहि बलि हिय अमित मोद बढ़ाय कै;
जलनाथ ससि अरु अपर सुरगन हर्ष अति पावत भये,
अरु नाय बलि पद भाल सब मन मुदित सुरपुर कौ गये।

उत गुरुहिं दैत्य-नरेस आपु मनाय आयसु पाय कै,
निज सैन लैकै सिन्ध के तट रच्यौ सिविर बनाइ कै;
इत सुरप लै दिकपालगन अरु नागराज बुलाइकै,
तेहि सजग कीन्ह्यौ निज कुटिल प्रस्ताव को समुझायकै।

सुर असुरगन मिलि तबहिं मन्थर अचल लावन कौ गये,
पचि मरे पै नहिं अचल डोल्यौ दैत्य-बल कुंठित भये;
लखि तबहिं सबहिं निरास श्रीहरि वाम-बाहु लगायकै,
गहि ताहि बिनहिं प्रयास डार्‌यौ सिन्धु के मधि लायकै।

वह अनाधार अगाध अम्बुधि मैं लग्यो बूड़न जबै;
धरि प्रबल कच्छप रूप हरि निज पीठ पै राख्यौ तबै;
पुनि करि चतुर्भुज वपुष वापै आपु बैठे जायकै,
यहि भाँति दीन्ह्यौ सून्य नभ मैं रुचिर खम्भ बनायकै।

अभिलाप हरि कौ देखि तब हरि बासुकीहि बुलायकै,
कह "रज्जु तुम बनि जाहु सब मिलि मथें सागर आयकै;"
सिर धारि सुरप अदेस मन्दर माँहि सों लिपटत भयो,
अमरेस सुरयुत आय वाकौ प्रथम ही आनन गह्यौ;

यहि चाल कौ समझे बिना सब दैत्य अमित रिसायकै,
अहि सीस गहिबे काज तिनसौं लगे झगरन आयकै;
"ह्वै विमल-वंस-विभूति निज कुल गौरवहिं ख्वैहैं नहीं,
यहि नाग को अधमांग काहू भाँति हू छ्वैहैं नहीं।"

लखि सफल अपनी चाल तिनकी बुद्धि पै मुसकायकै,
सुर त्यागि वासुकि-सिर लगे सब पुच्छ की दिसि जायकै;
हरि प्रथम बल करि खैंचि निज दिसि बहुरि बलि खैंचत भये,
इमि पाँच बार फिराय मन्दर दोउ निज सिविरन गये।

सुर असुर दोउ मिलि मथन लागे अमित रोष बढ़ायकै,
सुनि करन जुर कारन रवहिं जलजन्तु चले परायकै,
लहि विकट भूधर की चपेटनि भगत ससि घबरायकै,
उछरत तिमिंगिल नक्र कौहूँ अमित चोटनि खायकै।

उठि विपुल तुंग तरंग नापन गगन कहँ मानो चली,
कै परसि हरि पदकंज कौ यह करत मृदु विनती भली;
है सम्पदा हू आपदा याको कठिन रच्छन महाँ,
परि खलन के पाले कहौ अब याहि लै जावैं कहाँ।

इत सुमिरि सुरप अदेस वासुकि अमित रोष बढ़ायकै,
विष-ज्वाल लाग्यो तजन दैतन दिसि हिये अनखायकै;
जाते अनेकन दैत्यगन जरि छार तेहिं ठौरहिं भये,
अरु सके जे विष झेलि ते कारे कलूटे ह्वै गये।

उत बाड़वागि प्रकोपि तावन तिनहिं तापन सों लगी,
स्रम-हरन सीतल वात इत हिम-किरनि निकरनिसों जगी;
उत तपत अहिम-मरीच-माली ज्वाल जनु बरसायकै,
इत करत छाया जात घनगन सुमन जूह गिरायकै।

पै वरजि तिन कहँ कहत बलि, 'हम लेइहैं याकौ नहीं,
पर तियनि पै कहुँ दैत्य-वंस-नरेस दीठि न डारहीं;"
लै वारुनी वर कलस देवनि ओर वैठी जायकै,
अति रूप रासि निहारि ताकौ रहे सुर मुसकायकै।

तब कढ़ी कमला जासु के वर रूप कौ अवरेखिकै,
सुर असुर दोऊ चकित से रहि गये इकटक लेखिकै;
कह "सिन्धु देव अदेवगन महँ याहि जो मन भाइहै,
प्रातहि स्वयम्वर माहिं तेहि जयमाल या पहिराइहै।"

लै वारुनी अरु इन्दिरा को गयौ सो निज गेह को,
पुनि मथन लागे सिन्धु दोउ विसराय के निज देह को;
कहुँ विफल श्रम नहिं होत है यह बात हीय दृढ़ायकै,
अरु अधिक फल की आस पै विश्वास अमित वढ़ायकै।

पानि लै पीयूष घट तब आपु धन्वन्तरि कढ़े,
सुर ताहि लैवे काज प्रमुदित जबहिं वाकी दिसि बढ़े;
तब करकि कै बलि कह्यो, "वाही ठौर पै ठाढ़े रहौ,
जनि लखौ याकी ओर तुम पथ आपने गृह को गहौ।"

२—लक्ष्मी-स्वयम्वर

आजु है सिन्धुसुता को स्वयम्वर,
और सुरवृन्दनि हू की अवाई;
या लगि मानो महा मुद मानि,
दियो प्रकृती सुषमा वगराई,
ता मम मंचनि की अवलीनि पै,
ऐसी अनूप छटा कछु छाई;
मानो सुधाधर ने हरखाय;
दई वसुधा पै सुधा वरसाई।

तौ लगि आवन लागे विमान,
तहाँ असुरासुरवृन्दनि लै लै,
त्यौं परिचारकहू कर जोरि,
लगे तिन्हैं मंजु बतावन गैलै,
स्वागत द्वार पै ठाढ़ो ससी,
गहि के कर मंच लौं जात लै छैलै,
पाँव धरा पै जहाँई धरै,
तहाँ चाँदनी चारु, चहूँ दिसि फैलै।

सम्भु, विधाता, तथा हरि, सक्र,
जलेस, धनाधिप, नैरित, आये;
वायुसखा, जमराज औ पौन,
बृहस्पति, मंगल, बुद्ध सुहाये,
त्यो सनि सुक्र, तथा बलि, वासुकी,
बान, कुमार महा छवि छाये;
किन्नर, रच्छ, विद्याधर, यच्छ,
स्वयंवर देखन के हित धाये।

धारि दियो सिविका तिन लाय के,
तासौं कढ़ी जलरासि दुलारी;
भूषन वेस बनाय भले,
तहाँ आय गईं सबै देवकुमारी,
लीने मयंकमुखी कर माल,
मराल की चाल लजाय पधारी;
लागी करावन देवन कौ,
परिचै वर वीन की धारनवारी।

"ये सबै नागन के अधिराज हैं,
सेय महेस को धन्य कहाये;
धारत हैं सिर दिव्य मनीन,
सबै विधि संकर के मन भाये;
कंकन होत कबौं करके,
गुनि मानि पिनाक पै जात चढ़ाये;
औ इनही सौं कबौं कसि कै,
सिर के जटा जूट हैं जात बँधाये।

जानत हैं सिगरे जग मैं,
विष होत भुजंगम दाँत मैं धारो;
पै अधराधर कौ छत कै,
सो बिगारि सकै कछुहू न तुम्हारो;
त्यौं कै पियूष कौ साज सबै,
चतुरानन ने निज हाथ सँवारो;
या लगि हीय मैं नेसुक संक,
करौ जनि मानि कै बैन हमारो।"

पै लहि सिन्धु-सुता को सँकेत,
लै भारती ताहि चली कछु आगे,
लाखनि लौं अभिलाखनि धारि,
मनोभव ताहि निहारन लागे,
देख्यौ जबै कमला हग फेरि कै,
भाग मनोज महीप के जागे;
ताको बिसेष लखे अनुरागहि
सारदा बैन कहे रस पागे।

"है यह इन्द्र कौ आयुध मंजु
औ लावनिता कौ अनूप अगार है;
त्यौं हरि संकर औ विधि के,
व्रत को यह आपु डिगावनहार है;
धारे प्रसून नराचनि पै,
जग कौन सहै यहि वीर की मार है;
कीजिए याहि कृतारथ तौ,
रति सी वर भामिनी को भरतार है।"

आगे बढ़ी जबै सिन्धु-सुता,
चलि बानी गई जहाँ बैठे पिनाकी;
रोकि तिन्हैं औ कछू मुसकाय के,
भारती भौंहैं भ्रमाय कै बाँकी,
बोली 'सुनौ कमला! जग मैं,
समता न करै कोऊ दान मैं याकी,
औ गुन औगुन याके दुऔ,
मति मेरी विचारिविचार कै थाकी।'

"जाचकै देत है विस्व विभौ,
अपने तन पै गज-खाल सँवारत;
जोगिन मैं सब सो हैं बड़े,
पै तियाहि सदा अरधंग मैं धारत,
लीन्हें त्रिसूल रहैं कर मैं,
तऊ दासनि के भ्रम सूलनि टारत;
जारि ही देत सबै जग कौ
जबै तीजो विलोचन खोलि निहारत।'

'मेलिकै कंठ मधूक की माल,
इन्हैं तुम आजु कृतारथ कीजियो;
औसर मंगल गावन काज,
हमैं निज वृद्ध बिवाह मैं दीजियो;
त्योंही बिनोद बिहारनिकौ,
इनसौं मिलिकै सिगरो रस लीजियो;
पै गृह-जीवन के सुख की
तपसी घर में रहि साध न कीजियो।"

'गुन-गौरव-गाथा सखी इनकी,
हम पै कहू भाँति न जाति कही;
गईं बीति हमैं बरसैं कितनी,
इनके नहिं तर्क कौ पार लही;
यह कैतव-नीति के पंडित हैं,
समता इनकी जग आप यही;
पचिहारे किते तपसी तपकै,
बर देत हैं पै फल देत नहीं।"

बन्दि तिन्हैं मन मैं सकुचायकै,
सिन्धुजा आगे कछू पगुधारी,
कोटि मनोज लजावत जे,
पुरुपोत्तम पै निज दीठि कौ डारी;
ठाढ़ी जकी-सी छिनैक रही,
कर्तव्यहु कौ न सकी निरधारी;
या विधि ताकी दसा अवलोकि,
कह्यौ इमि बीन को धारनवारी।

"आगे चलौ सखी देखैं वरैं,
परिचै इनकौ हम कैसे करावैं;
मो अबला की कहा गति है,
सहसानन हू कहि पार न पावैं;
जानैं कहाँ इनको गुन-गौरव,
वेद हू नेति ही नेति बतावैं;
चन्द्रत बूढ़े बबा इनके पग,
आपु महेसहु ध्यान लगावैं।"

सिन्धुजा कौ हरि मैं अनुराग,
लग्यौ त्यौं अदेवनि हीय जरावन;
बार न लागी तिन्हैं तनिकौ,
पल मैं हरि कौ वपु लागे बनावन;
औ यहि भाँति सबै मिलिकै,
कमला की तबै मति लागे भ्रमावन;
ता समै भोरी न जानि सकी,
चहियै जयमाल किन्हैं पहिरावन।

देखि तहाँ हरि बैठे अनेक;
लगे मुसकान कछूक त्रिलोचन;
त्यौं भ्रम मैं परि सिन्धु-सुता,
पहिराय सकी नहिं माल सकोचन;
ताकी लखे दयनीय दसाहिं,
लगे अपने मन मैं बलि सोचन;
जानि रहस्य सँकेतहि सौं,
नृप आप निवारि दियो तिन पोचन।

देखि अचानक और की ओर;
सँकोचि मधूक की माल सँवारी;
त्यौं दुऔ कम्पित हाथ उठाय,
दियौ पुरुषोत्तम के गर डारी;
लाजन बोलि सकी न कछू,
कृस देह भई पै रोमंचित सारी;
औ सखियानि कै संग समोद,
विनोद-भरी निज गेह सिधारी।

वा निसि सागर - नन्दिनी सौं,
हरि जू को भयौ तहँ मंजु विवाहू;
आय सुरासुर दोऊ अनन्द सौं,
लीन्ह्यौ सबै मिलि लोचन लाहू;
व्यापि रह्यौ तिहू लोक के बासिन,
हीतल माँहि अमन्द उछाहू;
सिन्धु ने कीन्हे किते सतकारति,
औ उपहार दियौ सब काहू।

श्री हरदयालुसिंह के ग्रन्थ

काव्य-ग्रन्थ—दैत्य वंश।

——

पंडित रामचन्द्र शुक्ल 'सरस'

'सरस' जी का जन्म ग्राम मऊ, ज़िला बाँदा में संवत् १९६० में हुआ। आप डाक्टर 'रसाल' के अनुज हैं। इन्टरमीडियेट तक शिक्षा प्राप्त कर आपने बोर्ड ऑव रेविन्यू में नौकरी कर ली और इस समय भी आप वहीं अच्छे पद पर हैं। आप पहले खड़ी बोली में रचना किया करते थे और उन रचनाओं का एक संग्रह 'सरस संकलन' के नाम से प्रकाशित हुआ है।

इसके पश्चात् आपने ब्रजभाषा में 'अभिमन्यु-वध' नाम का एक सुन्दर खंडकाव्य लिखा, जिसमें से यहाँ कुछ पद संकलित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त आपने अलंकार, रस पिंगल आदि साहित्य के विविध अंगों की विवेचना-सम्बन्धी कई पुस्तकें भी लिखीं, जो विविध परीक्षाओं के लिए स्वीकृत हैं।

सरस जी की रचनाएँ सरस, समलंकृत और सजीव हैं। वाक्य-विन्यास सुव्यवस्थित, संयत और ओजादि गुण से पूर्ण रहता है।

अभिमन्यु प्रयाण

राखि रस-राज की बिराजि रही मूरति पै,
मुद्रा मुख-हास कैं बिलास की ढरी परै;
'सरस' बखानैं, करुना की छाँ कोयनि मैं,
लोयनि मैं लाली रुद्रता की उतरी परै;

चक्र भृकुटीनि मैं भयानकता भूरि भरी,
अद्भुत आभा सान्त-भाव सौं जरी परै;
उर उभरी सी परै वीर-रस की तरंग,
अंग प्रति अंग सौं उमंग उछरी परै।

पेखि उत्तरा कौं मौन, बोल्यौ अभिमन्यु वीर,
"कठिन समस्या एक एकाएक आई है;
उत अरुझे हैं पितु-मातुल हमारै, इत—
व्यूह रचि द्रौन जीतिवे की घात लाई है;
जानत न ताकौ कोऊ भेद, खेद आनैं सवै,
हौं ही घात जानौं पितु गर्भ मैं सिखाई है;
यातैं वेगि दीजै विदा सारथ सपूती करौं,
ना तरु नसैहै सवै, जो बनी बनाई है।"

लखि निज-नाथ-नैन रक्त, वर बैन व्यक्त,
सुनि-गुनि वीर-वधू उत्तरा सकाई है,
त्यौं ही कर्न-द्रौन-दुरजोधन से जोधन की,
दारुन लराई चित्त चित्रित लखाई है;
देखि सौम्य-मूरति, विसूरति त्यौं जुद्ध-दृस्य,
इत-उत हेरै सुधि-बुधि विकलाई है,
मंगल-अमंगल कै परि असमंजस मैं,
हाँ न करि आई औ नहीं न करि पाई है।

बस धरि-धीर वीर नृपति विराट-सुता,
पंच-दीप-आरती उतारनि जवै लगी;
'सरस' बखानै, पैठि बैठि उर अन्तर मैं,
औरै कछू भारती उचारनि तबै लगी;

कम्पित सी ह्वै कै भई झम्पित सी दीप-सिखा ,
वाम ओर औचकि सधूम ह्वै दवै लगी ;
चकि, जकि, थहरि, थिरानी यौं अनैसी लेखि ,
देखि मुख, श्यावन त्यौं सुरनि सवै लगी ।

अभिमन्यु-सारथी से

'एहो ! वीर-सारथी ! चलौ तौ "जै मुरारि" बोलि,
मोलि अब और रारि रंचक न लैहौं मैं;'
'सरस' बखानै, 'त्यौं पुरानौ सबै लेखा लेखि,
देहौं हाथ खोलि कछू वाद न करैहौं मैं ;'
'लोक कैं समच्छ लच्छ बाँधि कोटि जोरि-जोरि,
धनु लै समूल चक्र-ब्याज-दरि देहौं मैं ;
काल नियरायौ है, निधन करि वैरिन कौं,
रिन कौं निवेरि त्यौं अवेरि ही चुकैहौं मैं ।'

'निज अभिमान, मान औ गुमान हूँ की हम ,
सूत जू ! अपूत छल-छूत की बखानैं ना ;
'सरस' कहै, त्यौं कुल-कानि-आनि ही की कहैं,
साँची कहैं ही की ही, सुभाव की प्रमानैं ना ;
अतुल बली जौ तात-मातुल प्रचारैं क्रुद्ध ;
तौ हूँ जुद्ध जोरैं हम मान्य मन मानैं ना ,
द्रौन, कृप, कर्न, कृतवर्म, कुरु-राज कहा ,
हम जमराज के बबा सौं भीति आनैं ना ।'

पुनि अभिमन्यु कह्यौ, 'देखौ सूत ! वैरिन सौं ,
'त्राहि त्राहि, पारथ-सपूत' यौं कढ़ैहौं मै ,
'सरस बखानै 'आजु देखत अखंडल कैं',
वंस-महिमा सौं महि-मंडल मढ़ैहौं मैं ,

छाँटि भट-भीरनि कौं काल-कुंड पाटि-पाटि,
काटि-काटि मुंड मुंड-माली पै चढ़ैहौं मैं;
तीरन कैं पिंजर मैं बमकत बीरनि कौं,
कीरनि लौं आनि राम-राम ही पढ़ैहौं मैं;"

'खलबल भारी खल-बल मैं मचैगी जब,
बाननि की बिकट घनाली गिरि जायगी;
'सरस' बखानै, यौं प्रमानै अभिमन्यु बीर,
रवि-रथहू की चाल परि थिरि जायगी;
हलचल ह्वैहै अचला मैं चलकारी इमि,
जातैं फनि-पति की फनाली फिरि जायगी;
काया जुद्ध-भूमि माँहि यह गिरि जायगी कै,
आज धर्म राज की दुहाई फिरि जायगी।"

करत मनोरथ यौं रथ पैं सुभद्रा-सुत,
बीर-रस कैसो अवतार नयौ साजै है;
'सरस' बखानै, संग सैन सूर-बीरनि की,
ताकैं, ज्यौं बिभाव-भाव लै प्रभाव राजै है;
आयो ढिंग समर-थली कैं रथ माँहि बली,
चौंकि रिपु-सैन चली सोचि भानु भ्राजै है।
लखि अभिमन्यु कौं जिते के ते तितै के रहे,
चकित चितै कै रहे सोचि, को बिराजै है।

पेखि अभिमन्यु कौ समन्यु कहै कोऊ यह,
गेय कार्तिकेय कौ अजेय अवतार है;
मूरति बिलोक सौम्य 'सरस' प्रमानै कोऊ,
ओज-भरौ साँचौ यह मार-सुकुमार है;

गौरव विचार कहै कोऊ यह कौरव कौ,
प्रगट्यौ पराभव भयंकर अपार है;
कोऊ त्यों बखानै, अभिमन्यु वेष-धारी जिष्णु,
विष्णु सेस-सायी बन्यौ पारथ कुमार है।

कहत दुसासन सँभारि यौ उसाँसन कौ,
यह तौ त्रिविक्रम कौ विक्रम-विसाल है;
'सरस बखानै, आय करन प्रमानै यह,
कै तौ जामदग्नि, अग्नि देव कै कराल है?
सोचत जयद्रथ महद्रथ भयंकर है;
आयौ प्रलयंकर त्रिसूली महा काल है;
बोले द्रौन बिहँसि, हमारे सिष्य पारथ कौ,
कौसल-कृतारथ लड़ैतो यह लाल है"

रणांगण में अभिमन्यु

पारथ कुमार! सुकुमार मार हूँ तैं तुम,
'सरस' सलोनी बैस सोभा सरसाये हौ,
यह अनुसारि कौ 'निहारि अनुमानै' हम,
मानै मृगया कौं चलि भूलि इत आये हौ;
कहत जयद्रथ, "अयान यह जानै कहा,
तुम तौ मयान, मूल! आन किमि लाये हौ?"
निठुर युधिष्ठिर के आय धौं पठाये इत,
ठाये चित कैसो हित-अहित भुलाये हौ।"

नृपति जयद्रथ! महद्रथ गुमानी सुनौ,
बिन छल-मानी यह जैमी-कछू भाखौं मैं;
'सरस' बखानै, यौं प्रमानै अभिमन्यु आन,
ध्यान कै निहारौ छल-छिद्र मन माखौं मैं;

जा मुख सौं बालक बताय हँसै ता मुख कौं,
कंदुक कै बीर-बाल ह्वै वौ अभिलाखौं मैं,
जासों किन्तु नीच मीच ! रावरी लिखी है ताही;
पूज्य पितु-बान हेत तेरौ सीस राखौं मैं।

सुनि कटु बैन यौं जयद्रथ रिसौंहैं हेरि,
भौंहैं फेरि दीन्ह्यौ वेगि हाथ धनु-सर मैं;
'सरस' बखानै कह्यौ, "मूरख न मानै जु पै;
जानैगौ हमैं तौ जवै जैहै जम-घर मैं;"
हाकौं कै सुनी औ असुनी सी उत्तरेस तौलौं,
ताकि तीर तमकि पँवारे हरबर मैं;
दीख्यौ दाहिने मैं सिन्ध-राज कैं समूचौ धनु,
ऊँचो उठि आयो किन्तु आधौ वाम कर मैं।

"ऐसी छुद्र-छोटी पुनि टूटी धनुहीं लै तुम,
रोपि रन-रुद्र श्री त्रिजै की लहिवौ चहौ;"
'सरस' बखानै; अभिमन्यु मुसकाय कह्यौ,
"जात हम द्वार सौं गहौ जौ गहिवौ चहौ;
तजि मरजाद, सिन्धु-राज ! परि पाछैं पुनि
आय बड़वागि सौं दहौ जौ दहिवौ चहौ;
नातरु हमारी कृपा, रावरी त्रपा कौ भार.
टारन कौं सीस तैं रहौ जो रहिवौ चहौ।"

"रहि-रहि धाय दीठि सस्त्र ओर जाय ठहि,
वहि-वहि ब्रह्म-अस्त्र लौं प्रवाह कर कौं;"
'सरस' बखानै, अभिमन्यु यौं अमानै पुनि,
"जात जरौ लोहू मन्यु सौं सरीर भर कौं;

कलमख वारौ, कटु, कारौ औ नकारौ कहूँ,
होतौ जौ न खारौ, अनिखारौ, दोपकर कौं,
तौ पुनि तिहारौ सिन्धु-राज ! आज जीवन लै,
देतौ अर्घ रुचि सौं रिझाय दिनकर कौं।"

रावव-समान हाथ-लाघव विलोकि तासु,
सिन्धुराज चाहि और सराहि हियैं रहिगे ;
'सरस' बखानै, धनु टूटे भये ऐसे त्रस्त,
अस्त्र-सस्त्र एक हूँ न क्यौं हूँ कर गहिगे ,
राजनि की ओर हेरि लाजनि समाये जौ लौं;
औचकि भुराये देखि कौतुक यौं ठहिगे ;
तौ लौं उत्तरेस के अमोघ वर वाननि सौं,
चक्रव्यूह-द्वार के महान खम्भ ढहिगे।

स्यन्दन सुमित्र सूत हाँक्यौ कै विचित्र ढंग ,
रिपु-दल देखि दंग ह्वै अति चकायौ है ;
'सरस' बखानै, कर्न-द्रोन लौं प्रबुद्ध सुद्ध ,
बीरनि हूँ माया-जुद्ध नाहिं ठहरायौ है ;
सकल चमू मैं चलै चक्र लौं चहूंधा चारु ,
कौंधि चंचला लौं नीठि दीठि चौंधियायौ है ;
रंच न थिरात, जात मन कैं मनोरथ लौं।
एक ह्वै अनेक बीर व्यापक लखायौ है।

सुभट सुभद्रा-सुत बीरनि की भीरनि मैं ,
चारौं ओर केसरी-किसोर लौं गराजै है ;
'सरस' बखानै, देखि भीरि रिपु-वाननि की ,
आनन पै ओप लै सचाप कोप छाजै है ;

रंग बदरंग त्यौं विपच्छिनि कौं ढंग देखि,
रंग निज लेखि मन्द-हास मुख राजै है;
रौद्र-रस राँच्यौ त्यौं भयानक सौं माँच्यौ मनौ,
बीर-रस हास कैं बिलास मैं बिराजै है।

तमकि तपाक सौं सुभद्रा कौ लड़ैतो लाल,
लाल करि नैन सिंह-सावक लौं गाजै है;
'सरस' बखानै, ज्या-निनाद सौं दिसानि पूरि,
कंचन-कोदंड पै प्रचंड सर साजै है;
बान भरि लाये मंडलीकृत सुचाप-बीच,
मंजु मुसुकात मुख-मंडल यौं राजै है;
सारत मयूख लौं मयूख रवि-मंडल पै,
करत अमंगल ज्यौं मंगल बिराजै है।

परम तरंगी रन-रंगी पारथो है वीर,
तीखे-तीर आनि भट-भीरि छाँटि देत है;
करि प्रलयंकर भयंकर सक्रुद्ध जुद्ध,
रुद्र लौं बरूथिनि समुद्र पाटि देत है।
'सरस' कहै, त्यौं बाल-प्रकृति-कुतुहल कै,
काहू कौं बिचारि डरपोक डाँटि देत है,
नासा-कान काहू कैं हँसी ही मैं निपाटि देत,
कौतुक सौं काहू की कलाई काटि देत है।

पावस मैं मंडल दिखात चन्द्रमा पैं जैसौ,
तैसौ मंडलीकृत सरासन लखावै है;
हाथ पारथी कौ भाथ-भीतर सिधावै कबै,
सायक निकास और बिकास कबै पावै है;

प्रमानैं यहै,
'सरस' बखानै, गुनी-गनक प्रमानैं यहै,
मानै हम सोई लेखि लीला यौं समर मैं;
जापैं दीठि देत नीठि ताकी तौ करै समृद्धि,
वृद्धि ना करै है गुरु बैठै जाहि घर मैं।

"सम्मुख भई है दुःखदायी जोगिनी धौं आजु,
होतौ न तौ ऐसौ, एक बालक सौं हारैं हम,
'सरस' सुनावैं, यौं बतावैं बीर लै उसाँस,
बड़े-बड़े आँस यौं लहू कैं हाय! ढारैं हम;
सक्र के विजेता द्रौन, कर्न, आपु अक्र भये,
वक्र विधि है गये हमारैं धौं विचारैं हम;
बादि ही हमैं तौ कुरुराज! यौं धिकारैं आपु।
आपै आपु आपनें कौं आपु ही धिकारैं हम।"

धाक अभिमन्यु की धँसी यौं; बसी ऐसी हाँक,
आँक न दिखात, परै ज्यौंत विथराने से;
'सरस' बखानै; कुरुराज कैं कढ़ैं न बैन,
नैनहूँ चढ़ैं न बढ़ैं बाहु विथकाने से।
हिम्मति-हुलास हियैं हुमसि हिराने सबै,
उकसि उराने रोष-दोपहूँ सिराने से;
ऐसी भीति-भावना समाई रग-रग माँहि,
डगमग जाँहि पग, मग मैं थिराने से।

जात दुरि जोधन मैं काह दुरजधोन! तू,
तोसौं बैर-सोधन कैं हेतु लरिबौ चहौं;
'सरस' बखानैं, यौं प्रमानै उत्तरेस बीर,
"देवि-द्रौपदी कौं दाह-दुःख-दरिबौ चहौं

देखत अनी के नीके चंडिका के खप्पर में,
स्रोनित तिहारौ आनि भूरि भरिबौ चहौं;
पूज्यवर भीम की तिहारी जाँघ तोरिबे की,
तोरि के प्रतिज्ञा न अवज्ञा करिबौ चहौं।"

"आवौ बान-पथ पैं न रथ पैं, लुकाने जाव,
एक तुम कारन हौ यह रन-रार कैं;
जेहि बल भूलि, प्रतिकूल ह्वै रहे हौ फूलि,
तूल लौं उड़ैहौं ताहि देखत तमारि कैं;"
'सरस' बखानै, "हम बचन प्रमानैं आजु,
बचन बचाये हूँ न पैहौ त्रिपुरारि कैं;
मरन निवारौ चहौ करन! हमारी तब,
सरन लहौ औ गहौं चरन मुरारि कैं।

अनुमति मानि आनि सोई मति कर्न बीर,
तीखे तीर तीसक सरासन पैं साजे हैं;
'सरस' बखानै, अनजानै पारथी कौ धनु,
काटि हूँ महारथी कहावत न लाजे हैं;
छिन्न बिसिखासन कैं लीन्हैं जुग भाग भिन्न,
पारथ-कुमार यौं बरीक लौं बिराजे हैं;
मंडित-प्रताप सम्भु चाप करि खंडित ज्यौं,
खंड-जुग लीन्हैं रामचन्द्र छबि छाजे हैं।

आई बीर-पानि मैं मियान सौं कृपानि कढ़ी,
पानी-चढ़ी बाढ़ सौं प्रगाढ़ गढ़ी ढावै है;
'सरस' बखानै, त्यौं बिपच्छिनि कौं पच्छिनि लौं,
लपकि लपालप खपाखप खपावै है

सक्र-असनी लौं चंक्र-व्यूह की अनी लौं घूमि,
चूमि-चूमि भूमि पुनि व्यौम कौं सिधावै है;
रिपु-वल-साली सैन-सघन-घनाली माँहि,
खेल चंचला लौं चारु चमक दिखावै है।

कढ़त सियान-गर्त-सौं सदामिनी लौं कौंधि,
चख चकचौंधि चलै यौं प्रभानि पागी है;
'सरस' पढ़ै त्यौं वढ़ै लपकि प्रभंजन मैं,
पाय रिपु-प्रान-पौन और जोर जागी है;
जीवन उड़ाय ताप-जीवन-बिलासिनि कौ,
दलदल हूँ कौं छारिवे मैं अनुरागी है;
'पानीदार पारथ-सपूत की कृपानी-गत,
पानीदार-धार मैं बिलीन बड़वागी है।

टूटे अस्त्र-शस्त्र देखि छूटे अवसान जबै,
त्रस्त ह्वै कछूक अभिमन्यु अकुलायौ है;
'सरस' वखानै, त्यौं प्रपंचिनि-प्रपंच लेखि,
पेखि झरि बानन की आनन उठायौ है;
कहि कटु वैन, नैकु नैन-मुख बक्र करि,
अक्र करि सैन, रथ-चक्र गहि धायौ है;
सक्र-मदहारी चक्र-धारी ह्वै सक्रुद्ध मानौ;
भीष्म-जुद्ध-दृश्य आय फेरि दुहरायौ है।

लीन्ह्यौ खेत भारी कुरु-नाथ सौं अकेलैं जाय,
मन को कियौ है धाय-धाय हल-वल तैं ;
'सरस' वखानै, अरि-हर सर सौं वखेरि,
हेरि अन्तराय कौं निकाय हर्‌यौ तल तैं ;
सींचि निज सर निकासे पुनि जीवन सौं,
टारी अरि-ईति-भीति सारी वाहु-वल तैं ;
काटि-काट फूले-फरे विरवा सुकीरति कैं,
रासि कै सुभद्रानन्द सोयौ परि कल तैं ।

परिचय

१—श्री बदरीनारायण चौधरी 'प्रेम घन,' मिरजापुर
 (जन्म सं० १६१२-निधन सं० १६७६)
२—पंडित श्रीधर पाठक, पद्मकोट, प्रयाग
 (जन्म सं० १६१६-निधन सं० १६८५)
३—पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', आजमगढ़
 (जन्म सं० १६२२)
४—श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर', राजमहल, अयोध्या
 (जन्म सं० १६२३-निधन सं० १६८६)
५—लाला भगवानदीन 'दीन', काशी
 (जन्त सं० १६२३-निधन सं० १६८७)
६—रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण', कानपुर
 (जन्म सं० १६२५ निधान सं० १६७२)
७—पंडित सत्यनारायण 'कविरत्न', धाँधूपुरा आगरा
 (जन्म सं० १६४१-निधन सं० १६७५)
८—श्री वियोगी हरि, हरिजन आश्रम, देहली
 (जन्म सं० १६)
९—रावराजा डाक्टर, श्यामबिहारी मिश्र लखनऊ
 (जन्म सं० १६३०)
 रायबहादुर शुकदेव बिहारी मिश्र, लखनऊ
 (जन्म सं० १६३५)
१०—डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, विश्व विद्यालय, प्रयाग
 (जन्म सं० १६४६)
११—श्री दुलारेलाल भार्गव, लखनऊ
 (जन्म सं० १६४६)

लीन्ह्यौ खेत भारी कुरु-नाथ सौं अकेलैं जाय,
मन को कियौ है धाय-धाय हल-चल तैं ;
'सरस' बखानै, अरि-हर सर सौं वखेरि,
हेरि अन्तराय कौं निकाय हर्‌यौ तल तैं ;
सींचि निज सर निकासे पुनि जीवन सौं,
टारी अरि-ईति-भीति सारी बाहु-बल तैं ;
काटि-काट फूले-फरे बिरवा सुकीरति कैं,
रासि कै सुभद्रानन्द सोयौ परि कल तैं ।

परिचय

१—श्री बदरीनारायण चौधरी 'प्रेम घन,' मिरजापुर
(जन्म सं० १६१२-निधन सं० १६७६)

२—पंडित श्रीधर पाठक, पद्मकोट, प्रयाग
(जन्म सं० १६१६-निधन सं० १६८५)

३—पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', आजमगढ़
(जन्म सं० १६२२)

४—श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर', राजमहल, अयोध्या
(जन्म सं० १६२३-निधन सं० १६८६)

५—लाला भगवानदीन 'दीन', काशी
(जन्म सं० १६२३-निधन सं० १६८७)

६—रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण', कानपुर
(जन्म सं० १६२५ निधान सं० १६७२)

७—पंडित सत्यनारायण 'कविरत्न', धाँधूपुरा आगरा
(जन्म सं० १६४१-निधन सं० १६७५)

८—श्री वियोगी हरि, हरिजन आश्रम, देहली
(जन्म सं० १६)

९—रावराजा डाक्टर, श्यामबिहारी मिश्र लखनऊ
(जन्म सं० १६३०)
रायबहादुर शुकदेव विहारी मिश्र, लखनऊ
(जन्म सं० १६३५)

१०—डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी, विश्व विद्यालय, प्रयाग
(जन्म सं० १६४६)

११—श्री दुलारेलाल भार्गव, लखनऊ
(जन्म सं० १६४६)

१२—डाक्टर रामशंकर शुक्ल 'रसाल', विश्व-विद्यालय, प्रयाग
(जन्म सं० १६५०)
१३—श्री हरदयालुसिंह, भूसी, प्रयाग
(जन्म सं० १६५०)
१४—पंडित रामचन्द्र शुक्ल 'सरस', नया कटरा, इलाहाबाद
(जन्म सं० १६६०)

इस संग्रह में निम्न-लिखित काव्य-ग्रन्थों से अवतरण लिये गये हैं

प्रेमघन सर्वस्व—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
काश्मीर सुषमा—राय साहब, रामदयाल अगरवाल कटरा, प्रयाग ।
रस कलस—खड्ग-विलास प्रेस, बांकीपुर ।
रत्नाकर—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
ऊधव शतक—रसिक-मंडल, प्रयाग ।
पूर्ण-संग्रह—गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय; लखनऊ ।
हृदय-तरंग—नागरी प्रचारिणी, सभा; आगरा ।
वीर-सतसई—साहित्य प्रेस, प्रयाग ।
मुक्तक-मंजूषा—अप्रकाशित ।
दुलारे दोहावली—गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ ।
रसाल-मंजरी—अप्रकाशित ।
दैत्य-वंश—इंडियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद ।
अभिमन्यु-वध—राय साहब; राम दयाल अगरवाल कटरा, प्रयाग ।